सिद्धयोग

संरक्षक [illegible]

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

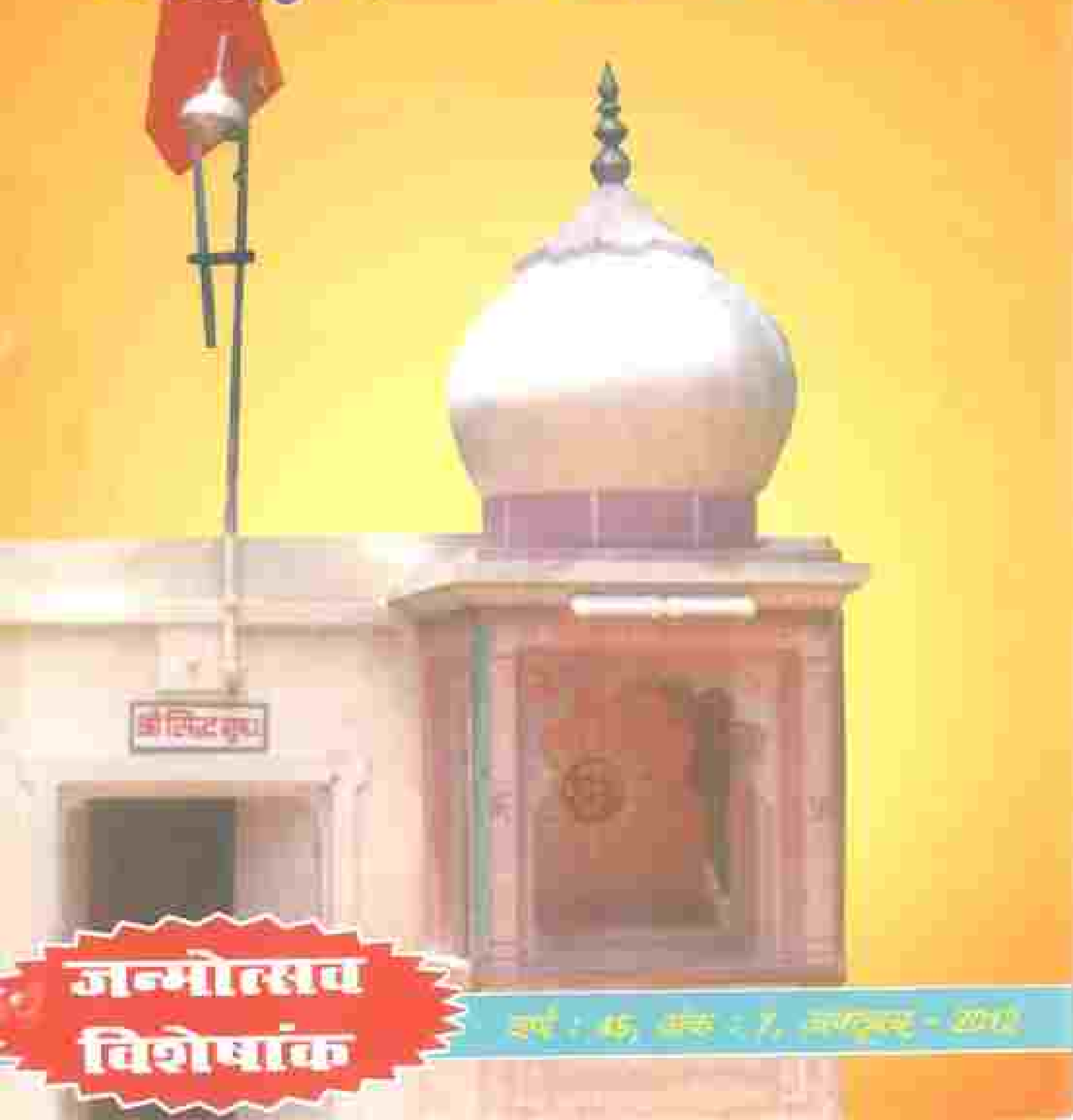

जन्मोत्सव
विशेषांक

वर्ष : 45 अंक : 7, अक्टूबर - [illegible]

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक--पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :–शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 अक्टूबर 2012 अंक : 7

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु–
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।

कठोपनिषद् 2/2/11

जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाशक सूर्य देवता लोगों की आँखों से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता; उसी प्रकार सब प्राणियों का अन्तरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दुःखों से लिप्त नहीं होता क्योंकि सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर ब्रह्मश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) रासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर ब्रह्मश्री चन्द्रमोहनजी महाराज — 3
2. सम्पादकीय — 6
3. श्री रघुराज के सांसों का प्राणायाम – [illegible] — 10
4. गीतामृत पदावली — 14
5. योग–आसन – [illegible] — 17
6. प्यासा तेरे दर्शन को – [illegible] राय बघेल — 18
7. शारीरिक दुःखों की निवृत्ति के उपाय – डॉ. [illegible] मिश्रा — 19
8. [illegible] एवं उनकी जीवन साधना – डॉ. श्री विजय सिंह — 22
9. जीवन का [illegible] – [illegible] शर्मा — 27
10. श्रीमति ललिता शर्मा की जीवन कथा – श्री [illegible] राय बघेल — 28
11. सिद्धयोगाधिपति श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी – [illegible] — 31
12. हमारे प्रणय सम्राट योगिराज गुरुदेव – [illegible] शर्मा — 35
13. षड्दर्शन समन्वय – [illegible] — 38
14. श्री सद्गुरुदेव की कृपा से श्री कृष्ण भगवान का साक्षात्कार – [illegible] — 45
15. [illegible] शक्ति का संचार – [illegible] कुमार शर्मा — 52
16. वैराग्य – प्रो. [illegible] — 53

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 150.00
द्विवार्षिक	: रु. 280.00
आजीवन (10 वर्ष सदस्यता)	: रु. 900.00

• विशेष लेख

अभ्यास के द्वारा वैराग्य की साधना

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सिद्धयोग के गत अंक में हमने ''वैराग्य साधना का अमर उपाय'' शीर्षक लेख दिया था किन्तु अभ्यास के द्वारा मनुष्य किस प्रकार से वैराग्य के उच्चतम भावों को प्राप्त करता है वह भी हमारी शास्त्रीय पद्धति है। वैराग्य यद्यपि मोक्ष का एक सही रूप ही है। वैराग्य की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ योगी अपने मन में यह अवश्य मान ही लेता है कि –

प्राप्तं प्रापनीयं, क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः छिन्नः श्लिष्ट पर्वा, भवसक्रमो यस्याविच्छेदाज्जनित्वा म्रियते मृत्वा च जायत इति. ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यं एतस्यैव हि नान्तरीयकं कैवल्यमिति।

अर्थात् प्राप्त करने लायक वस्तु प्राप्त कर ली, क्लेश क्षीण कर दिये पोरी से पोरी की तरह जुड़ा हुआ संसार चक्र मैंने काट दिया जिसके कारण जन्म और मरण होता था। अब मैं नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, अजर–अमर नित्य तत्व हूँ। इस प्रकार वैराग्य मोक्ष का नान्तरियक सिद्ध हुआ। श्रीकृष्ण ने श्रीमदभगवद्गीता में मन की चंचलता को स्वीकार करके अभ्यास और वैराग्य को मन की एकाग्रता का परम साधन माना है। गीता का वह प्रकरण इस प्रकार है। अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण जी से प्रश्न किया –

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात् स्थितिं स्थिराम्।
चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याह निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

अर्जुन ने कहा 'हे मधुसूदन ! साम्यत्वेन जो योग आपने कहा है वह सर्वथा ठीक है। चंचलता से इस मन की स्थिरता मैं बिल्कुल नहीं देखता हूँ। हे कृष्ण यह मन बहुत ही चंचल बलवान एवं डालने वाला है। जिस प्रकार वायु को नहीं रोका जा सकता उसी प्रकार इस मन को भी पकड़ा नहीं जाता। अर्जुन के इस प्रकार प्रश्न करने पर भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः।।

हे महाबाहु अर्जुन! यह बात बिल्कुल सत्य है कि मन बहुत ही कठिनता से वश में आने वाला है और बहुत ही चंचल है। किन्तु अभ्यास और वैराग्य द्वारा पकड़ा जा सकता है। जो लोग असंयतात्मा हैं, हे अर्जुन मेरा विचार है उनको योग कभी प्राप्त नहीं हो सकता और जिन्होंने अपने आप पर नियन्त्रण किया है वह प्रयत्न करते हुए अवश्य ही उपाय से प्राप्त कर सकते हैं। इसी सिद्धान्त को कठोपनिषद् में उपदेश करते हुए यमदेव ने इस प्रकार कहा है –

यस्त्व विज्ञानवान्, अयुक्तेन मनसा सदा।

तस्येन्द्रियाण्य वश्यानि, दुष्टाश्वा इव सारथेः॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।

तस्येन्द्रियाणि वश्यानि, सदश्वा इव सारथेः॥

अर्थात् जो मनुष्य अविज्ञानवान होता है अर्थात् जिसका मन पर नियन्त्रण नहीं होता उस व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में नहीं हुआ करतीं। इसी प्रकार जो व्यक्ति ज्ञानवान है और युक्त मन वाला है, उसकी इन्द्रियाँ वश में हुआ करती हैं जैसे अच्छे घोड़े सारथी के वश में हुआ करते हैं।

अतः उपर्युक्त लेख से यह तो भली प्रकार सिद्ध हो गया कि अभ्यास-परायण योगी अपनी इन्द्रियों और मन पर नियन्त्रण प्राप्त करके अपनी प्रगति को ऊँचा बढ़ा सकता है और वह प्रेय से परम श्रेय भागी बन ही सकता है। कदाचित भाग्यवश मनुष्य पर-वैराग्य को प्राप्त हो जाय तो वह गुण-कर्मों से छूटकर अपने स्वरूप में अवस्थित हो ही जाया करता है क्योंकि वैराग्य मोक्ष का नान्तरीयक माना गया है। हमारे शास्त्रों में जहाँ अभ्यास के भिन्न-भिन्न प्रकार मिलते हैं वहीं प्रकार से सांकेतिक भाषा में वैराग्य का महत्त्वपूर्ण वर्णन भी मिलता है। यह इस प्रकार के छिपे हुए भाव हैं कि जिनको सहसा मनुष्य समझ भी नहीं सकता। वैराग्य शब्द का अर्थ है 'विगत राग' हो जाना। ज्यों-ज्यों इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में राग-परायण होती हैं त्यों त्यों वे सब अपने विषयों को छोड़ने में असमर्थ हो जाया करती हैं। इस विषय में हमारे पूर्व आचार्यों का इतिहास और स्मृति के रचयिताओं का बिल्कुल एकमत है। श्री मनुजी महाराज ने अपनी मनुस्मृति में बिल्कुल साफ और स्पष्ट शब्दों में कह दिया है –

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्।

सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च,

न विप्रदुष्ट भावस्य सिद्धिं गच्छति कर्हिचित।।

वशे कृत्वेन्द्रिय ग्रामं संयम्य च मनस्तथा।

सर्वान् संसाधयेदर्था नाक्षिण्वन् योगतस्तनुम्।।

श्रुत्वा स्पृष्टवा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वाचयो नरः।

न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रिय।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि चित्त का अपहरण करने वाली इन्द्रियों को इस प्रकार वश में रखे जिस प्रकार सुसारथी घोड़ों को रखा करता है क्योंकि इन्द्रियों का अनुगामी होने से हजारों प्रकार के दोष पैदा हो जाया करते है और उनको संयम में ले आने पर जल्दी ही मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। उत्पन्न हुई कामनायें, कामनाओं के उपभोग से कभी भी शान्ति को प्राप्त नहीं होती, प्रत्युत और अधिक बढ़ती चली जाती है। जैसे अग्नि में घृत आदि हवि डालने से अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती जाती है। उसी प्रकार इन्द्रियों का उपभोग करने पर उनका लौल्य दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही चला जाता है क्योंकि कभी भी अजितेन्द्रिय मनुष्य को वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप सिद्ध नहीं हुआ करते। अतः मनुष्य को चाहिए कि सारी इन्द्रियों के समूह और मन पर नियन्त्रण करके और योग के द्वारा अपने शरीर की रक्षा करते हुए कामनाओं को प्राप्त करे। जो मनुष्य सुन करके, स्पर्श करके, देख करके, भोग करके और गन्ध ग्रहण करके न प्रसन्न होता है, न ग्लानि को प्राप्त होता है उसको जितेन्द्रिय समझना चाहिए। इन सब शास्त्रीय सिद्धान्तों को पढ़कर और सुनकर मनुष्य एक ही निश्चय पर पहुँचता है कि इन्द्रियों का अपने विषयों में राग होना ही वासनिक प्रवृत्ति का मुख्य कारण है। यदि सभी इन्द्रियां अपने–अपने विषयों में विगतराग हो जायें तो उनकी प्रवृत्ति कभी भी उनमें हो ही नहीं सकती। इस विषय को इस प्रकार समझ लीजिए – जैसे हमारी चक्षु इन्द्रिय की प्रवृत्ति सुन्दर रूप देखने में रागान्वित है तो वह हमारे को सुन्दर रूप की ओर आकृष्ट कर देती है। यदि उसी चक्षु इन्द्रिय के सामने किसी मल–मूत्रादि घृणित दृश्य को लाया जाय तो वह उसको कभी भी देखना पसन्द नहीं करेगी। इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय स्पर्शेन्द्रिय कभी भी उसका गन्ध ग्रहण करना, स्पर्श करना नहीं चाहेगी। क्योंकि वह उनमें विगत स्पृह है। अतः कदाचित किसी भाग्यवान साधक को वैराग्य प्राप्त हो जाय तो उसका उसकी इन्द्रियों पर स्वतः ही नियन्त्रण हो जाया करता है। हम सबको चाहिए कि हम जहा जिस–जिस अभ्यास में प्रयत्नशील रहते है, वहाँ उसी प्रकार वैराग्य के लिए भी प्रयत्नशील रहें।

● ● ●

योगेश्वर सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 103 वाँ पावन प्राकट्य दिवस

– योगाचार्य डॉ. रामलाल ब्रह्मचारी

कभी-कभी धराधाम पर भगवान् के 'सद्भाव' युक्त महापुरुष अवतरित होते हैं तथा भगवान् के संस्कारी जीवों का कल्याण करने के लिए योग के दिव्य ज्ञान का उपदेश कर उन्हें साधना के पथ पर लगाकर मुक्ति का अधिकारी बना देते हैं। ऐसे ही एक महापुरुष हरियाणा प्रान्त में एक छोटे से गाँव में अवतरित हुए हैं जो युगों-युगों तक भक्तों के लिए स्मरणीय रहेंगे। गाँव [illegible] में इनका प्रादुर्भाव हुआ। आपने भावी पिता को अपने आगमन का संकेत दे दिया था और कहा था कि मेरी माँ को दिव्य रसायनों का सेवन कराना। आपने ध्यानयोग के बल से पूर्व जन्म का वृतान्त जान लिया था। नेपाल में 'गण्डकी नदी पर स्थित 'त्रिवेणीधाम'' में रहकर बहुत समय तक समाधि का अभ्यास करते हुए शरीर के अत्यन्त वृद्ध होने पर अपनी इच्छा से उसका त्याग करके इस जन्म के पिता पूज्य पं. देवीराम जी के यहाँ नूतन शरीर धारण किया। शैशवावस्था से ही अखिलात्म भगवान श्री कृष्ण चन्द्र का साक्षात्कार बना रहता था। नाना प्रकार की बाल-लीलाओं को करते हुए अत्यन्त आह्लादित रहा करते थे। इनके सौम्य व आनन्दप्रदायिनी रूप को देखकर 'पिताश्री' ने इनका नाम 'चन्द्रदत्त' रखा। ये अपने भक्तों को शीतलता व शान्ति प्रदान करने वाले महापुरुष के रूप में विख्यात हुए।

पिता ने इन्हें बाल्यकाल से ही ऊँचे संस्कार दिये। पिताजी स्वयं अत्यन्त धार्मिक विचारों वाले तथा तपस्वी महापुरुष थे। इन्हें वे 4-5 वर्ष की अवस्था में ही गाँव के पास नहर पर ले जाकर स्नान कराते तथा अपने साथ ही गायत्री मंत्र के जाप में बिठा देते थे। प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही कर दी थी। तत्पश्चात् हरियाणा व पंजाब के कई विद्यालयों में अध्ययन कराते रहे। अन्त में ऊँची शिक्षा के लिए इन्हें पंजाब में लाहौर में आचार्य विश्वबन्धु जी के संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश दिलाया। आचार्य जी बड़े ही विद्वान तथा तपस्वी धर्मात्मा महापुरुष थे। यहाँ पर कई वर्षों तक संस्कृत का अध्ययन किया। किन्तु भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी इन्हें बार-बार आकर्षित करते रहे। अन्ततोगत्वा वैराग्य की लहरें उमड़ने लगीं। विद्यालय छोड़कर श्री वृन्दावन धाम आ गये और भगवान के दिव्य लीला स्थलों व मन्दिरों के दर्शन करते

हुए आनन्दित होते रहे। भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी की कृपा से अल्पायु में ही योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त किये और योग मार्ग में प्रवेश कर समाधि में लीन रहने लगे। ऋषिकेश आश्रम में रहते हुए वैराग्य के भाव दृढ़ होने लगे। अब आप प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग में आरूढ़ होने का विचार बनाने लगे। किन्तु अन्तर्यामी श्री प्रभुजी ने इन्हें ठीक मौके पर जाने से रोक दिया। एक पत्र में उन्होंने लिखा था 'चिरंजीव! हम बस्तियों में रहकर योग विद्या का प्रचार कर रहे हैं और तुम जंगलों में जाने की तैयारी कर रहे हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है। अभी हमने तुमसे बहुत काम लेना है। अत: हिमालय की ओर जाने का विचार त्याग कर हमारी आज्ञाओं का पालन करो। अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए वनों में जाने का विचार त्याग दिया।

श्री प्रभुजी की आज्ञा से योग पिपासुओं को 'शक्तिपात दीक्षा प्रणाली' से दीक्षा देने लगे। साधकों में अद्‌भुत रहस्यमयी क्रियायें स्वत: होने लगीं। ध्यान की ऊँची-ऊँची स्थितियाँ प्राप्त होने लगी। गुरुदेव शिष्यों का एक बड़ा झुण्ड इकट्‌ठे करने में रुचि नहीं रखते थे न ही प्रचार के माध्यमों से ख्याति चाहते थे। योग जिज्ञासु के धैर्य एवं श्रद्धा को परख कर कई वर्षों के बाद योग दीक्षा प्रदान करते थे। वस्तुत: अच्छे संस्कार युक्त साधक ही योग में आगे बढ़ पाते हैं। जिनके अच्छे संस्कार नहीं हैं शक्तिपात के बावजूद भी उनका पतन देखा गया। उर्वरक भूमि में बीज खाद डालने पर ही उत्तम फसल हो सकती है। ऊसर भूमि में डाला गया बीज अंकुरित नहीं हो पाता। मन्द संस्कारी व्यक्ति कदाचित् गुरुचरणों तक पहुँच भी जाये तो वहाँ भी उसे माया के ही दर्शन होते हैं। फलत: श्रद्धा बन नहीं पाती। उत्कृष्ट संस्कारवान व्यक्ति को गुरुदेव स्वत: ही खींच लेते हैं अपनी व्यापक सत्ता का परिचय देते हुए स्वप्न या ध्यान में दर्शन दे जाते हैं। साधक दिव्य दर्शन पाकर आनन्दित रहने लगता है धीरे-धीरे प्रभु का चरण शरण मिल जाता है। सद्‌गुरु चरण मिल जाने पर साधक आत्म विभोर हो उठता है जन्मों से उसे जिस वस्तु की तलाश थी वह उसे मिल जाता है। उसे अब सब कुछ मिल गया। 'भुक्ति-मुक्ति प्रदातारम् तस्मै श्री गुरवे नम:' गुरुदेव तो सांसारिक भोग्य वस्तु भी प्रदान करते हैं उसे मुक्ति भी दे देते हैं। गुरुदेव जब 18-20 वर्ष के ही थे उस समय ही आपको चित्त निर्माण आदि सिद्धि स्वायत्त थी अगद्धत्ता के प्रसंग में आपने स्वयं ही इस तथ्य का उद्‌घाटन किया है। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव से एक बार कहा था - तुम्हें श्री वृन्दावन धाम के वास के समय ही 'प्रभु' ने सारी शक्तियाँ दे दी हैं अत: तुम योग विद्या के प्रचार में लग जाओ।

सन् 1938 में श्री महाप्रभु जी के तिरोधान के बाद श्री गुरुदेव जी श्री सिद्धगुफा सवाई

धाम के दर्शनों के लिए आये। नितान्त एकान्त व सुरम्य स्थान को देखकर आनन्दित हो गये। स्थान की दिव्य छटा को देखकर आपने अपने योग प्रचार के कार्य के लिए इसे ही कार्यक्षेत्र चुन लिया। साधकों को शक्तिपात दीक्षा प्रदान की। रोगी व्यक्तियों को अपने नेति धोति आदि षट्कर्म क्रियाओं का अभ्यास कराया एवं जीवन तत्व साधन की क्रियाओं को कराना प्रारम्भ किया। इन क्रियाओं का अद्भुत लाभ मिलने लगा। सभी बीमार जो असाध्य से असाध्य भी आते गुरुदेव के संकल्प से स्वस्थ होकर ही घर लौटते थे।

ध्यान योग की दीक्षा संस्कारी साधक स्वयं चमत्कारिक तरीके से आकर लेते। इनमें रघुनन्दन प्रसाद टाट वाला का नाम उल्लेखनीय है। भगवान् शिव की आज्ञा से वे गुरुदेव से योग दीक्षा लेकर साधना में लगे। तीव्र तपश्चर्या एवं गुरु भक्ति के फलस्वरूप वाक्सिद्धि एवं दिव्य दृष्टि जैसी सिद्धियाँ प्रकाशित होने लगी। इसी प्रकार से जम्मू कश्मीर का संसार सिंह दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगी हुए हैं। कई गुमनाम साधक कन्दराओं में साधना रत हैं। पाकिस्तान की सीमा पर गुलमर्ग-खिलनमर्ग की तरफ गुरुदेव का एक शिष्य साधु रहा करता था। एक बार वाराणसी के गुरुभाई प्रमोद एडवोकेट और विन्ध्यवासिनी भाई उस क्षेत्र में घूमने गये तो अचानक वह योगी इनके सामने आकर "जयगुरुदेव" कहने लगा। वह आश्चर्य में पड़ गये। इस निर्जन जंगल में यह कौन हो सकता है। उस साधु ने कहा – मैं भी योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ। उनकी आज्ञा से साधना में लगा हुआ हूँ। वे मेरी हर प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। उस साधु ने गद्‌गद् कण्ठ से गुरुदेव की शक्ति व महिमा का गुणगान किया।

आपने कई प्रान्तों में योग आश्रमों की स्थापना की। यहाँ पर निःशुल्क योग की क्रियायें, आसन, प्राणायाम आदि सिखाये जाते हैं और बीमार व्यक्ति साधन से स्वस्थ होकर योग की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। योग विद्या को गुरुदेव ने कभी बेचा नहीं अर्थात् कभी फीस नहीं ली गई। नेति आदि भी निःशुल्क दिये व सिखाये जाते थे। आज भी यही परम्परा चल रही है। 'सर्वे सन्तु निरामयाः' की भावना को गुरुदेव ने हमेशा सामने रखा है।

अपने देश में कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन हुए हैं जिनमें कई बार इनकी अध्यक्षता रही है। 1986 में भी विश्व योग सम्मेलन में आप साधना-सत्र के अध्यक्ष थे। आप श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगी रहे हैं यही कारण है कि सैद्धान्तिक और अन्तरंग योग के ज्ञाता होने के कारण आपकी छवि व व्यक्तित्व अन्यों से विशिष्ट होती थी। योग के दुरूह सिद्धान्तों को आप बहुत ही सरल सुबोध भाषा में बता कर योग सिद्धान्तों को साधकों में कूट-कूट कर भर देते थे। योग के सिद्धान्तों को सरल ढंग से समझाने के लिए आपने 'योग सिद्धान्त' नामक यौगिक पुस्तक

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

के दो खण्ड प्रकाशित कराकर योग साधकों का बड़ा ही उपकार किया है। धन संग्रह का आपका कभी उद्देश्य नहीं रहा। चन्दा या फीस के आप हमेशा विरोधी थे। आप कहा करते थे - यहाँ आश्रम में जो कुछ भी है तुम लोगों का 'तुम लोगों के लिए ही है। हमारा इसमें कुछ नहीं है। हम तो निमित्त मात्र हैं श्री प्रभुजी ही करण कारण हैं।'

इस प्रकार से गुरुदेव निःस्पृह भाव से ही कर्म करते थे। अपने शिष्यों के लिये आप कल्पतरू हैं, उनके चरण तल में बैठकर जो भी कामना की जाती है सभी पूरी होती है। 'प्रणमामि गुरुम् गुरु कल्पतरूम्' कल्प वृक्ष रूप गुरुदेव को हम सदा ही नमस्कार करते हैं। आपके चिन्तन मात्र से जीवन की कठिनाइयाँ व दुःख दूर हो जाते हैं। आप अपने शिष्यों के अज्ञानग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं इसलिए ही संसार में आप सर्ववन्द्य होते हैं।

योग शब्द शक्ति का पर्याय है। जो अपने जीवन को योगमय बना लेता है उसी का जीवन दिव्य बन जाता है। तन, मन व बुद्धि की शुद्धि योग साधना से हुआ करती है। आत्म-साक्षात्कार का प्रमुख साधन योग को ही माना गया है। आज गुरुदेव के लाखों शिष्य/प्रशिष्य योग साधना में आरूढ़ हैं और उज्ज्वल व दिव्य जीवन की ओर अग्रसर हैं।

करुणामूर्ति श्री गुरुदेव का 103 वाँ प्राकट्य दिवस उनके सभी आश्रमों में विजयादशमी के दिन बड़े ही धूम धाम से मनाया जा रहा है। इस परम पावन वेला पर गुरुदेव के पावन चरणों में सभी शिष्यों का कोटि-कोटि नमन है।

● ● ●

शुभ सूचना

योग योगेश्वर सद्गुरुदेव भगवान् श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 103 वाँ जन्मोत्सव बुधवार 24 अक्टूबर को श्री सिद्धगुफा सवांई धाम समेत देश के कई स्थानों / प्रान्तों में बड़े ही धूम धाम से मनाया जा रहा है। अतः सभी गुरुबन्धुओं से निवेदन है कि 23 व 24 अक्टूबर को श्री सिद्धगुफा सवांई धाम पर आकर जन्मोत्सव का आनन्द लें तथा सद्गुरु कृपा के भाजन बनें। 24 अक्टूबर को ब्रह्मभोज व भण्डारा रहेगा।

निवेदक

आश्रमवासी व सभी साधकगण

श्री रघुराज के भांजे को प्राणदान

केशवदेव उपाध्याय

श्री सिद्ध गुफा सत्संग से सम्बन्ध रखने वाले लगभग हमारे सभी गुरुभाई-बहन, योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के लाडले शिष्य ठाकुर चन्दन सिंह के नाम से भलीभांति परिचित होंगे। आदरणीय श्री रघुराज जी इन्हीं चन्दन सिंह के सन्तानों में से एक हैं। चन्दन सिंह जी का परिवार महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज तथा श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपाओं से पूर्ण रूप से ओत-प्रोत है। आदरणीय रघुराज जी जब बहुत छोटे थे तथा वे प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई कर घर वापस लौट रहे थे, उन्हें बहुत तेज प्यास लगी थी तथा उन्हें ऐसा आभास होता था कि शरीर पानी पिये बिना मर ही जायेगा। उन्होंने बाबा जी को याद किया और बाबा जी ने रास्ते में ही कूप (कुंआ) प्रकट कर इनको [illegible] और उन्हें आशीर्वाद दिया था। ठाकुर रघुराज सिंह के मन में हमारे गुरुदेव के प्रति विशेष श्रद्धा नहीं थी। परन्तु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरणों में इनकी अपार श्रद्धा थी। [illegible] ने इनके मन में, गुरुदेव के चरणों के प्रति श्रद्धा पैदा कर दी। संक्षेप में प्रसंग इस प्रकार रहा कि श्री रघुराज जी ने प्रार्थना किया कि महाप्रभु जी ने जीवों के कल्याणार्थ जो सोलह शरीर धारण किये थे उन सोलह शरीरों में से इस समय कितने शरीर हैं। श्री गुरु ने [illegible] था कि लगभग श्री प्रभुजी इस धराधाम पर चार शरीर से मौजूद हैं। जब श्री रघुराज जी ने प्रार्थना किया कि श्री प्रभुजी किस नाम से कहाँ विराजमान हैं? तो आदरणीय ने [illegible] कहा था कि ध्यान में बैठकर देखो। श्री रघुराज जी ने ध्यान लगाकर देखा तो तीन शरीरों को भिन्न-भिन्न नाम तथा भिन्न-भिन्न स्थान पर विराजमान है, फिर चौथे शरीर के श्री गुरुदेव विराजमान मिले। इनको ध्यान की बातों पर बड़ा विस्मय और आश्चर्य हुआ एवं कुछ समयान्तर से तीन बार ध्यान लगाकर जब इन्होंने देखा तो चौथे प्रभुजी के रूप में हमारे गुरुदेव ही दृष्टिगोचर हुए। ये तत्काल ध्यान से उठकर गये एवं गुरुदेव भगवान के चरणों में साष्टांग प्रणाम कर बोले। हे प्रभुजी! [illegible] आपको बार-बार साष्टांग प्रणाम। श्री गुरुदेव भगवान ने इन्हें कन्धे से लगा लिया एवं बोले, [illegible] रघुराज मैं प्रभु थोड़े ही हूँ, एकान्त वातावरण था। रघुराज ने प्रार्थना किया कि हे प्रभु! ध्यान की बात क्या झूठी होती है? श्री गुरुदेव भगवान ने मुस्कराते हुए कहा, नहीं [illegible] ध्यान की बात झूठी नहीं होती। श्री रघुराज जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया कि हे प्रभु! ध्यान की बात झूठी नहीं होती तो आप प्रभु जी ही हैं, भले ही आप तो गुरुदेव के रूप में मिले हो. इस घटना के बाद रघुराज का गुरुचरणों में अनन्यप्रेम हो गया। अब हम मुख्य प्रसंग की मुख्य अंश की तरफ आपको ले चल रहे हैं।

श्री रघुराज जी की एक बहन कुमारी [illegible] देवी की शादी बुलन्दशहर के श्रीराम सिंह तोमर के साथ हुई है। शादी के कई सालों बाद तक इस दम्पत्ति को कोई सन्तान नहीं हुई तो

रघुराज की माता जी ने गुरुदेव, भगवान से प्रसाद लेकर इस दम्पति को भिजवाया। प्रसाद सेवन के बाद श्रीमती शारदा देवी को एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम राजू रखा गया। इस लड़के के जन्म लेने से श्रीमती शारदा देवी के ससुराल के साथ–साथ मायके वाले भी काफी प्रसन्न हुए। इस कृपा प्रसंग के पूर्व ही श्री रघुराज जी के पूज्य पिता ठाकुर चन्दन सिंह परलोक सिधार गये। अपनी नाती को देखने की तीव्र इच्छा रघुराज जी के माता जी के मन में थी। उन्होंने श्रीमती शारदा देवी को अपने घर सवाई ग्राम बुलाने के लिए कई बार बुलावा भेजा परन्तु ससुराल वालों ने इस डर से कि राजू को कुछ हो न जाय, इसलिए सवाई ग्राम में नहीं आने दिया। जब राजू लगभग छः साल का हो गया तो रघुराज की माता जी ने श्रीमती शारदा देवी के पति और अपने दामाद को पत्र लिखकर रघुराज के द्वारा भिजवाया, जिसमें लिखा था कि मेरा शरीर अब वृद्ध हो गया है अब पता न कब प्राण निकल जाय अतः राजू और उसकी माँ को यथाशीघ्र सवाई ग्राम भेजें। ससुराल वालों ने केवल एक माह रुकने की शर्त पर राजू को उसकी माँ के साथ सवाई ग्राम भेजा। राजू को देखकर वैसे तो सभी मायके वाले प्रसन्न थे, लेकिन राजू की नानी सबसे ज्यादा प्रसन्न थी।

राजू आनन्द के साथ अपने ननिहाल में खेल–कूद और खाना–पीना कर रहा था अभी एक हफ्ते ही बीते होंगे, उसके ऊपर खाँसी का प्रकोप हुआ। और खाँसते–खाँसते प्रातः लगभग पौने चार बजे उसका प्राणान्त हो गया। उस समय भाई रघुराज जी की ध्यान स्थिति बहुत अच्छी थी और वे सवाई ग्राम पर रात्रि निवास करके ही अपने साधना कर रहे थे। लड़के के प्राणान्त होने के बाद राजू की माँ और उसकी नानी बहुत ही दुःखी परेशान एवं उदास हो गयी। शारदा देवी सोच रही थी कि ससुराल में जाकर हम कैसे मुख दिखाऊंगी और राजू की नानी सोच रही थी कि हे भगवन! हम पर कलंक लग ही गया। सभी लोग सवाई आश्रम से रघुराज का आने का इन्तजार कर रहे थे। रघुराज जी जब प्रातः साढ़े पाँच बजे घर पहुँचे तो राजू का शव जमीन पर लिटाकर उसके ऊपर सफेद चद्दर डाली गयी थी। उसकी माँ और बहन की आँखें रोते–रोते फुल गयी थीं। थोड़ी देर में ही रघुराज जी को वास्तविक परिस्थिति का बोध हो गया। वे मन ही मन रो रहे थे। उनकी माँ ने समझाया कि बेटा, रोओ मत। तुम इस रहस्य को नहीं जानते। भैया चन्द्रमोहन जी। पूर्ण योगी, स्वतन्त्र ईश्वर और सर्व समर्थ हैं। उनके अन्दर सब कुछ करने की सामर्थ्य है। उनके पास अभी चले जाओ और उनके पास जाकर उनको साष्टांग प्रणाम कर जैसा मैं कहती हूँ, वैसा उनसे प्रार्थना करना।

रघुराज जी के माता जी ने बतलाया कि सबसे पहले जाकर तुम साष्टांग प्रणाम करना फिर हाथ जोड़कर श्री चरणों में हमारा साष्टांग प्रणाम निवेदित करना। उनसे कहना कि मैं उनकी गुरुबहन हूँ और मैं यह अच्छी प्रकार जानती हूँ कि आप सब कुछ करने की सामर्थ्य में हैं। यदि इनकी उम्र इतनी ही थी तो इसे जन्म देने का प्रसाद क्यों दिया था? इसके मर जाने से हमारे ऊपर यह कलंक लग गया कि लड़का अपने ननिहाल में जाकर मरा। इस कलंक से

छुड़ाने वाले मात्र आप ही हैं। यदि आप बहुत नहीं कर सकते, तो इसको [illegible] कर दीजिए, मैं इसे इसके घर भेज देती हूँ, वहाँ जाकर मर जाय तो कलंक से बच जाऊँ। अतः हे भैया! आप ऐसी कृपा करो कि आपकी बहन का शरीर छूटने के बाद, लोग उसे कलंकिनी कहना न आरम्भ कर दें. मेरा आपको श्री चरणों में बार-बार प्रार्थना के साथ साष्टांग प्रणाम।

जिस समय रघुराज अमाई धाम पहुँचे उस समय गुरुभवन में गुरुदेव अकेले चारपाई पर विराजमान थे। श्री रघुराज जी ने जाकर उन्हें साष्टांग प्रणाम निवेदित किया और वह अपनी बहन का प्रार्थना पत्र गुरुदेव के कर-कमलों में दिये। गुरुदेव ने पत्र को पढ़ा एवं उसे अपनी कुर्ती की जेब में रखकर श्रीमुख से बोले लल्ला! मुहल्ले के लोग बालक का मरना जान गये हैं क्या? रघुराज ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, नहीं प्रभो! अभी केवल हमारे परिवार के सदस्य ही जानते हैं. फिर गुरुदेव ने प्रश्न किया, लल्ला! बालक का प्राण कितने बजे के आस-पास छूटा है?

रघुराज ने प्रार्थना किया, "उसका शरीर तीन-चार बजे के आस-पास छूटा हुआ है। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, लल्ला! तुम अभी घर चले जाओ और अपनी माता को कहना कि मृत्यु बालक का शरीर खूब अच्छी प्रकार से कम्बल में लपेट लें, जिससे उसके शरीर का कोई भी अंग दिखलाई न दे, और वह तुम्हारी माँ के साथ आ करके दोनों गुफा के सामने कमरा नम्बर-एक के पास जो दो नीम के पेड़ हैं, उनके बीच में बैठ जाय। तुम भी उन सबों के साथ आ जाना, तब मैं बतलाऊँगा कि क्या करना है? रघुराज श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में प्रणाम करके अपने घर पहुँच गये एवं करीब पैंतालिस मिनट बाद अमाई धाम आ गये।

उनकी बहन मृत्यु बालक जिसके ऊपर कम्बल लपेटा हुआ था तथा रघुराज की माँ नीम के पेड़ के पास बैठ गयी और श्री रघुराज गुरुभवन में विराजमान श्री गुरुदेव भगवान को प्रणाम कर प्रार्थना किये एवं कहे कि वे सब आ गयी है। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा कि लल्ला! तुम तो बस कमरे की गेट पर रहकर खूब मुस्तैदी से ड्यूटी करो और किसी को भी कमरे के अन्दर मत आने देना। ब्रह्मचारी रामाश्रय से कह दो कि वह श्री प्रभुजी का पूजन तथा आरती की तैयारी कर दे, अब तुम कमरे से बाहर निकल जाओ और कमरे के पास ही रहकर तुम ड्यूटी करो। किसी को किसी भी परिस्थिति में कमरे के अन्दर मत आने देना। उस दिन पता नहीं कैसा संयोग था कि श्री गुरुदेव भगवान के पास आने वाले श्रद्धालु दर्शनार्थियों की संख्या दो गुनी थी। जो भी आता है श्री गुरुदेव के दर्शनार्थ गुरुभवन में प्रवेश करना चाहता था। श्री रघुराज जी कमरे में किसी को नहीं जाने देते। अधिकांश लोग तो मान गये, परन्तु कुछ लोग लड़ाई-झगड़े पर उतारू हो जाते थे। परन्तु रघुराज ने सबको बल पूर्वक रोक दिया एवं सब लोग गुफा के और कुँआ के बीच में थे। श्री गुरुदेव जी अपने कमरे से करीब तीन घण्टे बाद निकले। उन्होंने एक ही धोती आधी पहन रखी थी तथा आधे ओढ़े हुए थे। अपने गुरुभवन से निकलकर वे सीधे गुफा में गये, अनादि योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की आरती किये एवं आरती का

जल लेकर सीधे नीम के पेड़ के पास पहुँच गये। जहाँ श्रीमती शारदा देवी अपने बच्चे का शव लेकर बैठी थी। उनके साथ उनकी माता जी भी थीं। वहाँ पहुँचते ही श्रीमुख ने आदेश किया कि लल्ली! अब इसके शरीर से कम्बल हटा दो। ... कम्बल हटाने के बाद आरती का अभिमंत्रित जल उसके मुख पर डाले। करीब दो मिनट बाद फिर आरती का अभिमंत्रित जल उसके मुख और शरीर पर डाले, तदन्तर एक मिनट तक लगभग दो फीट की दूरी से अपनी अमृत बरसाइनी आँखों से अपलक देखे एवं आरती का अभिमंत्रित जल उसके मुखारबिन्दु पर अपने कर-कमलों से तीव्रगति से डाले। बालक को जोर की हिचकी आयी एवं उसके प्राण वापस आ गये। श्रीमती शारदा देवी एवं उसकी माँ ने वहीं जमीन पर लेट कर श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। श्रीमुख ने कहा कि अब इसे लेकर तत्काल अपने घर चले जाओ। उसके बाद श्री गुरुदेव श्री सिद्धगुफा पर आ गये। उपस्थित सभी लोगों पर जल के छींटे डाले एवं पूरी आरती किये। आरती करने के बाद श्री गुरुदेव भगवान अपने गुरुभवन में चले गये एवं दस मिनट बाद ही कुर्ता धोती पहने बाँये कन्धे पर साल लटकाये छड़ी लेकर, हमारे सभी भाई-बहनों के बीच आ गये एवं गुरुभवन के सामने रखी आरामकुर्सी पर प्रसन्न मुद्रा में विराजमान हो गये। हमारे सभी उपस्थित गुरुभाई-बहनों तथा आश्रमवासी साधकों ने श्री चरणों में बारी-बारी से साष्टांग प्रणाम किया। यह कृपा प्रसंग यहीं समाप्त होता है, हम भी योगेश्वर द्वय के चरण कमल में साष्टांग प्रणाम के साथ यह गुणगान करते हैं कि .....

प्रभुजी तुम्हारी महिमा, संसार गा रहा है।
शिवजी का धाम पावन, कैलाश गा रहा है।।
बैकुण्ठ गा रहा है, ब्रह्मलोक गा रहा है।
प्रकृति का जर्रा-जर्रा, चर-अचर गा रहा है।।

शोक संवेदना

बड़े दुःख से सूचित किया जा रहा है कि आश्रमवासी श्री देवी चरण शुक्ल का 24 अगस्त का देहावसान हो गया है। वे बरहन के रहने वाले थे तथा विरक्त साधक थे। वे पिछले चालीस वर्षों से आश्रम की विभिन्न सेवाओं में लगे रहे व 72-73 वर्ष के हो चुके थे। श्री प्रभुजी से प्रार्थना करते हैं कि वे अपने इस बालक को अपने चरणों में स्थान दें।

शोकाकुल
सभी आश्रमवासी सन्तगण

गीतामृत पदावली

लेखक - राम प्रकाश गुप्ता, [illegible]
प्रेषक - डॉ. [illegible] चतुर्वेदी, गोरखपुर

गतांक से आगे:

अध्याय 15

श्री भगवानुवाच

ऊपर जड़, शाखायें नीचे छन्द पर्ण हैं जिसके, तात!
अविनाशी अश्वत्थ कहाता, है वेदज्ञ, जिसे यह ज्ञात॥1॥

गुण पालित, विषयांकुरवाले तरु का अधः-ऊर्ध्व विस्तार।
कर्मफल-रूपी इस जड़ का, मानव-जग में पूर्ण प्रसार॥2॥

रूप नहीं दिख पड़ता जिसका, मिलता और न आदि, न अंत।
पार्थ! काटकर अनासक्ति से उस तरु के दृढ़ मूल अनंत॥3॥

लौट न आते जिसे प्राप्त कर, उस पद का करना सन्धान।
बोल, शरण मैं हूँ मैं उसकी, जिससे विस्तृत विटप महान्॥4॥

मान-मोह-आसक्ति-कामना-रहित, भजन में रत रहकर।
सुख-दुख-द्वन्द्व-रहित ज्ञानी जो पाते उस अव्यय पद पर॥5॥

जिसे नहीं भासित कर सकते चन्द्र, अनल या सूर्य प्रखर।
जाकर जहाँ न आना होता, वही परम मम धाम अमर॥6॥

जीव-रूप से सबके तन में रहता मेरा अंश अमर।
मन औ इन्द्रिय सभी खींचता वह प्रकृति से है नश्वर॥7॥

नई देह धारण जब करता, तज करके निज पहला तन।
इन्हें ग्रहण कर वह जाता, ज्यों वायु करता गंध-वहन॥8॥

श्रवण, नयन, जिव्हा, संस्पर्शन तथा घ्राण, सर्वोपरि मन।
जीव सदा इनके ही द्वारा करता विषयों का सेवन।।9।।

तन तजते या तन में रहते या करते विषयों का भोग।
नहीं जानते हैं अज्ञानी, किंतु जानते ज्ञानी लोग।।10।।

यत्नशील योगी को अपने जीवात्मा का रहता ज्ञान।
मलिन बुद्धि के अज्ञानी पर इसको कभी न सकते जान।।11।।

रवि का तीव्र तेज जो देता अखिल जगत् को धवल प्रकाश।
ज्योति चंद्र की, तेज का, हैं मेरे ही दिव्य विकास।।12।।

भू–प्रवेश कर, मैं जीवों को निज बल से धारण करता।
सोम सुधामय होकर मैं ही सब पौधों में रस भरता।।13।।

अनल–रूप धारण कर मैं ही नर–शरीर में हो उत्पन्न।
प्राणापान पवन से मिलकर सदा पचाता हूँ सब अन्न।।14।।

मैं सवर्ग हूँ, मुझसे होते ज्ञान, अपोहन, संस्कृति, तात।
वेद–वेद्य, वेदान्तकार हूँ, वेद सभी मुझको ही ज्ञात।।15।।

दो हैं पुरुष जगत् में, अर्जुन! जो कहलाते क्षर, अक्षर।
मूल तत्व को 'अक्षर' कहते, जीव मात्र कहलाता 'क्षर'।।16।।

उत्तम पुरुष अन्य है, अर्जुन! 'परमेश्वर' है उसका नाम।
त्रिभुवन में है वास उसी का धारण–पोषण उसका काम।।17।।

क्षर से परे जान तू मुझको, औ' अक्षर से भी उत्तम।
अतः लोक में तथा वेद में, कहलाता मैं पुरुषोत्तम।।18।।

मोह-रहित जो नर, हे अर्जुन! 'पुरुषोत्तम' का रखता ज्ञान।
वह सर्वज्ञ मुझे भजता है, सब-कुछ मैं ही हूँ, यह जान।।19।।

है यह गोपनीय अति जिसको, मैंने बतलाया है तात।
होता ज्ञानी सिद्ध पुरुष वह जिसको हो जाता यह ज्ञात।।20।।

('श्रीगीतामृत-पद्यावली' का पुरुषोत्तम-योग नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण)

(क्रमशः)

• • •

विश्वेश्वराय नमः। श्री रामलाल प्रभवे नमः।। सद्गुरु परब्रह्मणे नमः।।।

सूचना

सभी गुरु भाई बहिनों को सूचना देते हुए हर्ष हो रहा है कि गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी योग प्रचार मंडल वाराणसी के तत्वावधान में चार दिवसीय योग प्रचार शिविर का आयोजन हो रहा है। सभी गुरु भाई बहिनों से आग्रह है कि आयोजन में आकर इसका लाभ लें व पुण्य के भागी बनें।

कार्यक्रम

दिनांक – 1 नवम्बर से 4 नवम्बर तक

स्थान – विशाल होटल पिशाच मोचन वार्ड मलदहिया, वाराणसी

नोट – कार्यक्रम सूची कार्यक्रम के समय ही बता दी जायेगी।

निवेदक
योग प्रचार मंडल, वाराणसी

स्वास्थ्य

योग-आसन

गरुड़ासन

श्री घेरण्ड जी ने इस प्रकार बताया है -

जङ्घोरुभ्याधरा पीड्य स्थिर कायो द्विजानुतः।

जानूपरि करांयुग्म गरुडासन - मुच्यते।।

विधि - अर्थात् जंघा, उरु व पैर पिण्डलियाँ दोनों बेल समान लिपटे हुए हों इसी पूरे दबाव से नीचे जमीन पर टिके हुए पाँव के पंजे से खूब जमीन में दबाव दें व ऊपर दोनों हाथ भी

गरुड़ासन

एक दूसरे से लिपटे हुए हों। गरुड़ाकृति मालूम पड़े। इसी को गरुड़ासन कहते हैं।

समय – 1 मिनट से आरम्भ करके दो या तीन मिनट तक दोनों पैरों व हाथों को बदल कर दृढ़ता पूर्वक करें।

फल – शारीरिक दृढ़ता बढ़ती है। रक्त शुद्धि, उत्साह व शक्तिवर्धक है।

● ● ●

प्यासा तेरे दर्शन का

– जगदीश राय बंसल 'अधम'

गुरुदेव दया करके, मेरी आश पुजा देना।
प्यासा तेरे दर्शन का, मुझे दर्श दिखा देना।।
आप योग योगेश्वर हो – करुणा के भण्डारी।
मेरे सोए भाग जगा दो – हे दीनदयाल पुरारी
मझधार में है मेरी नैया – प्रभु पार लगा देना।
प्यासा तेरे ....(1)
हे आनन्द कन्द हमारे – निर्बल के सहारे हो
मेरे घट–घट के वासी – प्राणों से भी प्यारे हो
मैं शरण पड़ा हूँ तेरी – मुझ को न भुला देना।
प्यासा तेरे ....(2)
मैं जन्म जन्म का अपराधी – जैसा हूँ प्रभु जी तेरा
नहीं आसरे इस जग के – एक तू ही है मेरा
मैं चरणों का बलिहारी – मुझे रज चटा देना।
प्यासा तेरे ....(3)
पानी बिन मछली का – ना कोई सहारा है
तू ही एक अनन्ता – मेरा भाग्य विधाता है
'अधम' अधारा भटकू – मुझे तीर लगा देना।
प्यासा तेरे ....(4)

● ● ●

सांसारिक दु:खों की निवृत्ति के उपाय

– डॉ. राजकुमारी त्रिखा

आज के भौतिकवादी युग में विश्वमानव अत्यन्त दु:खी है। धनी, निर्धन, वृद्ध, युवक बालक सभी दु:खी हैं। इन्सान ज्यों–ज्यों अपने दु:खों को दूर करने में सचेष्ट होता है, त्यों–त्यों निन्यानवे के फेर में पड़कर और भी दु:खी होता है।

वस्तुत: सुख व दु:ख की भावना व्यक्तिनिष्ठ होती है। यदि कोई घटना किसी व्यक्ति को दु:ख देती है तो वही घटना किसी अन्य व्यक्ति को आनन्दित करती है। जैसे जब किसी की जेब काटकर कोई जेबकतरा उसके धन को अपना बना लेता है तो वह व्यक्ति तो धन–हानि के कारण दु:खी होता है, परन्तु जेबकतरा धन पाकर प्रसन्न होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सुख–दु:ख किसी घटना या व्यक्ति की भावना से सम्बन्धित होते हैं। अपने आप में कोई भी घटना सुखदायी या दु:खदायी नहीं होती।

प्रश्न उठता है तो फिर सुख व दु:ख क्या है? मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि जो मनुष्य के मन को प्रिय लगता है वह उसके लिए सुख है तथा जो मन के प्रतिकूल होता है वह उसके लिए दु:ख है। जैसे ही मानव इस संसार में जन्म लेता है, वह तभी से नाना प्रकार के सुख–दु:ख भोगता है। यही कारण है कि प्रत्येक जीव दु:खी रहता है। यद्यपि निर्धनता दु:ख का बहुत बड़ा कारण होती है, फिर भी धनवानों के दु:ख, मानसिक क्लेश, धन की सुरक्षा की चिन्ता आदि को देखकर भला कौन धन को सुख का कारण मानेगा। इसी प्रकार निरोगी काया को भी सुख का प्रथम साधन कहा गया है, परन्तु सामान्यरूप से अधिक लम्बी आयु वाले व्यक्तियों व चिरंजीवी महात्माओं को अपने ही सामने अपने पुत्र व पौत्रों के मरने का दु:ख झेलना पड़ता है।

इस प्रकार इस संसार में कोई भी सुखी नहीं है। इसीलिए बौद्ध–दर्शन में कहा गया है कि – सर्वं दु:खम्। मन के प्रतिकूल वस्तु तो दु:खद है ही, मानव मन के अनुकूल वस्तु भी दु:ख रूप बन जाती है, जब लाख कोशिश करने पर भी वह नहीं मिलती। जैसे मन–भावन स्वादिष्ट व्यंजन अति सुखप्रद लगते हैं। परन्तु जब वे खाने को नहीं मिलते तो दु:खदायी बन जाते हैं। क्योंकि इस स्थिति से तो यही अच्छा होता है कि वे व्यंजन पहले भी न मिले होते तो कम से कम उनके न मिलने पर दु:ख तो न होता।

इस तरह जो हमें सुख प्रतीत होता है, वह भी तात्त्विक दृष्टि से दु:खरूप ही है। परन्तु इस लेख में हम सुख–दु:ख का विवेचन लौकिक दृष्टि से ही करेंगे।

हम प्रतिदिन देखते हैं कि सुख व दु:ख का क्रम नदी के प्रवाह की भाँति चलता है। शास्त्र कहते हैं कि मनुष्य पूर्व–जन्म के पाप–पुण्य के अनुसार ही दु:ख–सुख पाता है। अपने पिछले किये कर्मों पर किसी का वश नहीं है, अत: उनका फल तो भोगना ही पड़ेगा।

प्रश्न उठता है कि सच्चिदानन्दघन परब्रह्म का अंशस्वरूप जीव क्या पिछले कर्मों के चक्र–व्यूह में फँसकर अभिमन्यु की तरह नष्ट होने के लिए जन्मा है। यदि नहीं, तो दुःखों से कैसे बचा जा सकता है ?"

यह सत्य है कि पूर्वकृत कर्मों का फल अवश्य मिलता है, परन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि से अपने वर्तमान दुःख का कारण पहचान कर उसे कम अवश्य कर सकता है। कभी–कभी तो उससे बच भी सकता है।

समस्त जागतिक दुःखों का मूल कारण है राग व द्वेष। यदि सांसारिक वस्तुओं के प्रति अपनी ममता, स्नेह, आसक्ति व तृष्णा त्याग दी जाये तो सांसारिक पदार्थ व घटनायें सुख व दुःख नहीं देती। ऐसी ही स्थिति वाले कर्मयोगी के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है– "सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।" मनुष्य सुख में सुखी व दुःख में दुःखी न होवे। सुख–दुःख दोनों का त्याग करने वाला परम सुखी होता है। इस प्रकार पूर्व–जन्म के कर्मों के फलस्वरूप में मिलने वाले दुःख से व्यक्ति बच सकता है।

परन्तु जितनी आसानी से यह शिक्षा दी जा सकती है, उतनी आसानी से इस मार्ग में सफलता नहीं मिलती। अतः एक ओर तो अनासक्त भाव से संसार में जीवन बिताने का अभ्यास करना चाहिए तथा दूसरी ओर दुःख नाश का उपाय भी करना चाहिए।

दुःख नाश के लौकिक उपाय

सर्वप्रथम तो दुःख आने पर अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए। आत्मिक बल से दुर्बल व्यक्ति दुःख आने पर घबरा जाते हैं, उन्हें उस समय कुछ नहीं सूझता। कहा गया है–

विधाता जाकूँ दारुण दुःख देई।
ताकी मति पहले हर लेई॥

मनुष्य बुद्धि प्रधान प्राणी है। उसे अपनी बुद्धि द्वारा विचार कर अपने दुःख का कारण जानकर उससे छूटने का उपाय करना चाहिए। मन को विषादग्रस्त नहीं होने देना चाहिए।

प्रायः मानसिक व शारीरिक दुःखों के चार कारण होते हैं। रोग, अप्रिय घटना की प्राप्ति, अधिक परिश्रम तथा प्रिय वस्तु का वियोग। ज्ञानी पुरुष को शारीरिक दुःख की निवृत्ति के लिए औषधि का सेवन करना चाहिए तथा विवेकपूर्वक विचार करके मानसिक दुःखों को नष्ट करना चाहिए। कई व्यक्ति अपनी पत्नी से अपनी बातें गुप्त रखते हैं। इस तरह वे अकेले सुख–दुःख झेलते हैं, परन्तु यह गलत है। महाभारत में कहा गया है– समस्त दुःखों की शान्ति के लिए पत्नी के समान दूसरी औषधि नहीं है। पति–पत्नी मृत्यु–पर्यन्त एक ही परिवार के अंग बनकर रहते हैं। उनके सुख–दुःख भी एक–दूसरे को सुखी या दुःखी बनाते हैं। माता, पिता, भाई, बहिन अथवा मित्र का अलग घर होने के कारण अलग स्वार्थ होता है। अतः स्वाभाविक है कि पति–पत्नी एक–दूसरे के सुख–दुःख को सहजता से अपनाते हैं। अतः अपने दुःख को सदा ही अपने जीवन–साथी से बाँटकर जी हल्का करना चाहिये। बीते हुए दुःखों का बार–बार चिन्तन भी नये दुःख के समान दुःख देता है। अतः बीते हुए दुःखों को भूल जाना चाहिए।

अपने लिए दु:ख देने वाले तत्वों को त्याग देना चाहिए, चाहे वे अपने शरीर के अंग ही क्यों न हों। किसी भी व्यक्ति से न तो सुख की आशा करो, न ही विश्वास करो, क्योंकि आशा पूरी न होने पर विकट मानसिक क्लेश होता है। विश्वासघात भी इन्सान के व्यक्तित्व को झकझोर डालता है।

शर-शय्या पर पड़े भीष्म पितामह उपदेश देते हुए सुखी जीवन का फारमूला देते हैं – "सबमें समता का भाव, व्यर्थ परिश्रम का अभाव, सत्य भाषण, संसार से वैराग्य और कर्मासक्ति का अभाव, ये पाँचों जिस व्यक्ति में होते हैं वह सुखी होता है।"

यद्यपि इन उपायों से दु:ख से बचने का सफल प्रयास किया जा सकता है, फिर भी होनी होकर रहती है। केवल भगवत्साधना में लगा इन्सान ही संसार में सुखी है –

नानक दुखिया सब संसारा।
सुखिया वही जो नाम अधारा।।

मद्‌भगवद् गीता में जगत्कर्णाधार श्रीकृष्ण कहते हैं –

तं विद्याद्दु:खसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्

अर्थात् दु:ख संयोग से वियोग कराने वाले यानी बचाने वाला उपाय योग है। हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा निर्दिष्ट योग-मार्ग ही मानव मात्र के समस्त दु:खों का सदा-सदा के लिए खातमा कर सकता है। अत: हम सभी परम शक्तिमान गुरुदेव से योग-मार्ग में प्रवृत्त होने की प्रेरणा व कृपा प्राप्त करें।

● ● ●

स्वधर्मे निधनं श्रेय:

दूसरे का धर्म सरल मालूम हो तो भी उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। बहुत बार सरलता आभासमात्र ही होती है। घर-गृहस्थी में बाल-बच्चों की ठीक संभाल नहीं की जाती, इसलिए ऊबकर यदि कोई गृहस्थ संन्यास ले ले, तो वह ढोंग होगा और भारी भी पड़ेगा। मौका पाते ही उसकी वासनाएं जोर पकड़ेंगी। संसार का बोझ उठाया नहीं जाता, इसलिए जंगल में जाने वाला पहले वहाँ छोटी-सी कुटिया बनायेगा। फिर उसकी रक्षा के लिए बाड़ लगायेगा। ऐसा करते-करते वहाँ भी उस पर सवाया संसार खड़ा करने की नौबत आ जाएगी। यदि सचमुच मन में वैराग्यवृत्ति हो, तो फिर संन्यास की कौन कठिन बात है? संन्यास को आसान बताने वाला स्मृति-वचन तो है ही। परन्तु मुख्य बात वृत्ति की है। जिसकी जो सच्ची वृत्ति होगी, उसी के अनुसार उसका धर्म होगा। श्रेष्ठ-कनिष्ठ, सरल-कठिन का यह प्रश्न नहीं है। विकास सच्चा होना चाहिए। परिणति सच्ची होनी चाहिए।

संत चरणदास एवं उनकी जीवन साधना

– डॉ. श्री विजय सिंह

सन् 1200 से लेकर देश स्वतन्त्र होने तक का समय, हिन्दू समाज के लिए अत्यन्त कठिन परीक्षाओं का रहा है। इस काल में भारतीय संस्कृति के सनातनत्व को समाप्त करने हेतु विधर्मियों ने नाना प्रकार के उत्पीड़न किये। गजनवी, गौरी, गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोदी और मुगल तथा मुगलों में औरंगजेब ने बलपूर्वक से हिन्दुओं के अस्तित्व को मिटाने के लिए आघात-पर-आघात किये, इन्होंने बड़े-बड़े मन्दिरों को तो नष्ट किया ही हजारों हिन्दुओं को साम-दाम, दण्ड-भेद से मुस्लिम होने को भी विवश किया। भारतीय जन-मानस की यह विषम परीक्षा-घड़ी थी। परन्तु उस देव-विहित परम प्रभु ने निराशा-रात्रि के बीच इसी काल में वैष्णव-भक्ति का प्रवाह महाप्रभु चैतन्य द्वारा तथा आगे चलकर लोक-रक्षक राम भावना को प्रकृति रामानन्द द्वारा प्रवाहित किया गया। इससे सगुण-निर्गुण साधनाओं का ऐसा स्रोत फूटा कि पाखण्डहीन मुमुक्षुओं को अपने अन्तर में अन्तर्यामी के दर्शन होने लगे। सगुणधारा में नाभादास, तुलसी, सूर, मीरा आदि कवि-हृदयों ने जन-मानस को राम व कृष्ण को समर्पित किया तो दूसरी ओर निर्गुण भाव की प्रतिष्ठा वृद्धि का जो काम नामदेव, कबीर, दादू, नानक, मलूक, दरिया आदि सन्तों ने किया वही बहुमुखी प्रतिभा लेकर चरणदासजी ने किया। इन लोगों ने उस समय धर्म को जिस प्रकार से पाखण्डों ने घेर लिया था, उससे मुक्ति दिलवाई। लोग तिलक-माला, तीर्थाटन, धूनी रमाना, जटा बढ़ाना, काय-क्लेश साधना ही धर्म समझने लगे थे। इन बाह्याचारों की निःसारता सन्तों ने समाज को समझाई तथा आन्तरिक साधनाओं का रहस्य, जिससे आत्म-शक्ति का विकास होता है तथा वस्तुतः प्रभु के सान्निध्य का लाभ होता है बताया। ऐसा योग-आधारित साधनाओं का प्रचार इन निर्गुणवादी सन्तों ने किया। लोग यथार्थ साधना से हटकर ज्योतिष, टोना-टोटका, जादू, मंत्र-तंत्र को ही धर्म समझने लगे थे। महात्मा चरणदास जी के आध्यात्मिक प्रचार का काल औरंगजेब के बाद दिल्ली के शासक मुहम्मदशाह के समय में था। नादिरशाह का आक्रमण भी इन्हीं दिनों हुआ था। अधिकांश हिन्दू जन-मानस इस समय तात्कालिक लाभ हेतु ही धर्माचार करता हुआ दिखाई पड़ता है। संत चरणदास ने अपनी रचनाओं में लोगों के उस समय के व्यवहार का सुन्दर वर्णन किया है –

बहुतक तपसी कष्ट साध,
बहुतक पंडित पोथी लाद।

बहुतक चुंडित जटा धारि,

चहुं ओर पावक जारि जारि।

बहुतक मुण्डित पूजा राखि,

बहुतक भक्तन पिछली साखि।।

यह तो रहा चरणदासजी के समय में धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण। अब हम इस भव–प्रत्यय योगी संत के जीवन–परिचय को जानना चाहेंगे जो इस प्रकार है –

जीवन–परिचय

''गुरु–भक्ति–प्रकाश'' नामक रचना संत चरणदास के परम प्रिय शिष्य रामरूपजी के द्वारा की गई है। इसमें सद्गुरु चरणदास के बाल्यकाल से आगे तक के लीला–प्रकरणों का बहुत ही भावग्राही वर्णन किया गया है। चरनदासजी का जन्म संवत् 1760 में अलवर नगर से तीन कोस दूर डेहरा नामक ग्राम में हुआ था। पिता श्री मुरलीधर और माता कुंजोदेवी थीं। पिता आध्यात्मिक रूझान वाले थे। जब चरणदास छोटे ही थे, उसी समय वे गृह–त्यागकर कहीं चले गये। पितामह की देखरेख में इनका शैशव बीता। बाल्यकाल के चौथे वर्ष से ही ईश्वर नाम की ओर अत्यधिक रुझान इनका लोगों ने देखा था। पाँच वर्ष की अवस्था में यह सूर्योदय से एक पहर पूर्व जग जाते थे और ब्रह्म ध्यान में संलग्न रहते थे। उनके इस व्यवहार के कारण लोग इन्हें बौरा और बुद्धिहीन समझते थे। पांचवें वर्ष में ही एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। जब ये बालकों के साथ खेल रहे थे, एक दिव्य कांतिवान कौपीनमात्र धारी महापुरुष और चरणदास (जिनका पूर्व का नाम रणजीत था) को बुलाया तथा स्नेह करते हुए कंधे पर बिठा लिया। पेड़े खिलाये और शक्तिपात दीक्षा देकर कहा –

हँस के कहा तोहि चेला किया,

कर धरि शीश भक्ति वर दीया।

तारण–तरण जगत में ह्वै हों,

बहुत उबार जीव ले जैहों।

जो कोई मंत्र तुम्हारा सुनिहैं,

सो निहिचै यमपुर नहिं जैहैं।

छत्रपती और राजा राया,

चहिहैं तुम चरणन की छाया।

शीश निवा सबही वर लीना,

उत्तर गोद चरनन शिर दीना।।

इस घटना के पश्चात् शक्तिपात के फलस्वरूप चरनदास के जीवन में आध्यात्म लहर हिलोरें लेने लगी। इधर शुभ-चिंतक माता, पितामह इनकी लौकिक शिक्षा के प्रति सचेष्ट हुए। बहुत प्रयासों के बाद भी पाठशाला की शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके। अन्तर्मन में चल रहा आनन्द-मेला वास्तव अन्तःकरण और सम्पूर्ण वृत्तियों को अन्तर्मुखी किये हुए था। अतः पठन-पाठन बाल्यकाल में न हो सका। उस समय बाल-विवाह की प्रथा भी थी। वैसे भी इनके पितागण इनको बहिर्मुख करने के लिए विवाह की बात चलाने लगे; परन्तु इन्होंने विवाह करने से इन्कार किया तो किसी भी तरह विचार से डिगाया न जा सका। इन पर आठ वर्ष की छोटी अवस्था में ही सिद्ध-अनुकम्पा हो जाने से इनकी अन्तर्मुखता अत्यन्त बढ़ गई। दिन-रात ध्यान में डूबे रहने लगे, नेत्र से श्रीकृष्ण के विरह में अश्रुधारा बहती रहती थी। कई-कई दिन बैठक भर में पड़े रहते, भौन-दुनिया की कोई खबर इन्हें नहीं रह जाती थी। दो-तीन वर्ष ऐसी ही अवस्था बनी रही।

वर्ष ग्यारवें की अद्भुत बात पुनीत।
प्रेम बीज उपजी हिये बढ़ी श्याम सू प्रीत।।
प्रेम वृक्ष बढ़ने लगा वरषा भया अतिजोर।
तनमन में छाया पची बाहर आया फोर।।

सोलह वर्ष की अवस्था में ही प्रभु-जिज्ञासा इतनी अधिक जागृत हुई कि जिस-तिस से "मोहूँ गोविन्द कैसे सूझे" पूछा करते।

लागा नेह देह सुध नाहीं,
खान-पान सब बिसराहीं।
कबहूं नैनन सों जल-धारा,
उठे प्रेम नहिं जाय सम्हारा।
श्याम मिलन की मन में आवे,
घर बाहर कछु नाहि सुहावे।
मिलें साधु जासूं यहि बूझै,
मोहूँ गोविन्द कैसे सूझै।।

एक बार किसी व्यक्ति ने कहा कि गुरु के उपदेश बिना गोविन्द को कौन बता सकता है। तब से सद्गुरु की तलाश इन्होंने प्रारंभ कर दी।

ढूँढे योगी अरु सन्यासी,
ढूँढे सब मत पंथ उदासी।

सत्गुरु कूँ ढूँढ़न ही लागे,

ढूँढ़े विरकत तपसी नागे।।

खोज–खोज पचि–पचि करि हारा,

लाभ मिलाय करे सुख सारा।।

इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। सद्गुरु–दर्शन एवं ब्रह्म–मिलन की उत्कण्ठा तथा बचपन में हुए शक्तिपात की गहन एकाग्रता से वे सदैव विह्वल रहा करते थे। तन–मन की सुधि खो गई, विरह–अग्नि दिन प्रति दिन बढ़ती गई।

ताते विरह अग्नि तन जारे,

बौरे भये देह अंग सारे।

बस्तर पहरन की सुधि नाई,

दस–दस दिवस होहि बिन खाई।।

X X X

दो–दो मास रहे बन मांही,

होहि व्यतीत रात दिन ह्यांही।

ऐसे लगा वर्ष उन्नीसा,

जानि करो जहँ मोखा तीसा।।

वे 19 वर्ष के होने पर एक दिन गंगाजी के तट पर अनशन करके बैठ गये कि जब तक सद्गुरु–दर्शन नहीं होगा तब तक उठना नहीं है, ऐसा मन बना लिया था। कई दिन बीतने पर ध्यान में श्री गुरुदेवजी महाराज ने दर्शन दिये और आकाशवाणी हुई कि शुकतारा पर आओ। वहाँ जाने पर वृक्ष के नीचे बैठे इनको सद्गुरु के दर्शन हुए। इस घटना का वर्णन देखें –

लखो अचानक पुरुष ह्वां,

लघु तरुवर की छांहि।

किशोर अवस्था सांवरी,

तन में वस्तर नाहि।।

आसन पद्म महादृढ किये,

बैठे नैयन के पट दीये।

मन को हरि की ओर लगाये,
ध्यान माहि अस्थिर ठहराये।।

ऐसे अलौकिक महापुरुष को सद्गुरु रूप में पाकर चरणदासजी धन्य–धन्य हो उठे। प्रसन्नता और प्रेम के आवेग से दौड़कर चरणों में लिपट गये और दीक्षा हेतु प्रार्थना की। एकान्त में इनको दीक्षा किस प्रकार से दी गई, इसका वर्णन भी कौतूहलजनक है, देखें –

ऋषि ने बूटी इक तब ल्याई दई बताय,
याको पीसो लोटिये फिर मोपै ले आय।
जब बूटी महाराज जो लीनी पीसी लाय,
सतगुरु के कर में दई चरणन शीश नवाय।
ऋषि ने तब चरणदास को लिया पास बैठाय,
हँसकर सिर नंगा किया बूटी दई लगाय।

सारे सिर पर लेपन कीन्ही,
घड़ी एक लाये जब चीन्ही।
फिर न्हाने की आज्ञा दई,
तभी पोखटी हवा इक भई।।
भक्ति राम न्हावे तिहि माही,
पहले दोऊ हाथ सिर लाई।
मलकर शीश नीर से धोया,
उतर बाल सब निर्मल होया।।
न्हाय आय बैठे जब पास,
ऋषि कहीं कंकर चिराला दास।
माथे तिलक सिलमिलो कीया,
श्री ज्योति रूपा कहि दिया।
अरु गुरु मंत्र जु कान सुनाया,
उत्तर विधि नित नेम बताया।।

उन अलौकिक महापुरुष ने नवयुवक चरणदास का क्षौर कर्म अद्भुत बूटी द्वारा कराके अलौकिक जल तरणी में स्नान करवा कर मन्त्र दान के साथ नियम, उपासना पद्धति तथा ध्यानयोग का मार्ग बताया था। जिसके परिणामस्वरूप तीव्र साधन से लगकर अध्यात्म के निगूढ़

मंजिलों को इन्होंने जल्दी ही तय कर लिया। सन् 1739 में ब्रजधाम की यात्रा इन्होंने की। कहा जाता है कि इस यात्रा में उन्हें साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण, राधिकाजी तथा उन ऋषिवर गुरुदेव का दर्शन लाभ हुआ। पाँच पहर ध्यानाभ्यास में ही रंगे रहा करते थे।

साधक शिष्यों के अनुनय करने पर आकाश गंगा में स्नान कराना तथा अनसन रत एक गोसाई पर शक्तिपात कर गोविन्द के दर्शन कराने अथवा पुत्र कलश के रूप में आशीर्वाद देना व घटित हुआ। इस प्रकार के अनेक अलौकिक कार्य लोगों में यथार्थ योग जिज्ञासा पैदा करने के लिए समय–समय पर इन्होंने किये।

चरणदासजी ने महाप्रयाण के दो दिन पूर्व ही अपने शरीर त्यागने की तिथि व समय शिष्यों को बता दिया था। अपने अंतरंगों को उन्होंने बताया कि जिस काम हेतु इस संसार में आना हुआ था वह अब पूर्ण हो गया है। परन्तु तुमसे कभी पृथक नहीं हूँ। ब्रह्म और सद्गुरु से स्नेह रखो। इस संसार में रहते हुए जब भी मेरा ध्यान करोगे, मुझे अपने हृदय में पाओगे।

● ● ●

जीवन का क्षण अनमोल...

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

जीवन का क्षण क्षण अनमोल। ऊँचे ऊँचे वचन न बोल।
जिह्वा से प्रभु की जय बोल।। केवल रघुपति राघव बोल।
वाणी से मधु अमृत घोल। अश्रुभरे नयनों से बोल।
प्रभु दर्शन कर लोचन खोल। हो रोमाञ्च वहीं हैं बोल।
यह जग है केवल इक ढोल। गद्गद् कण्ठ हुआ तब बोल।
सुन्दर पर अन्दर सब पोल। वहीं बोलो होकर अनमोल।
बोल बोल सबसे पर तोल। मिलते प्रभुको तब वह बोल।
केवल प्रियकर हितकर बोल। मोल न जीवन का अनमोल।
प्रभु अन्दर है हृदय टटोल। बोल बोल बस हरि हरि बोल।।

● ● ●

श्रीमति ललिता शर्मा की जीवन रक्षा

— जगदीश राय बंसल 'अधम'

नैया तेरे लल्ला की — डोले बीच मझधार।
आकर गुरु पद थाम लो — ये पकड़ी पतवार।।

अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक योग योगेश्वर दादा गुरु श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्य देव नारायण स्वामी गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की दया दृष्टि हर पल, हर क्षण हमारी रक्षा करती रहती है। शायद ही कोई ऐसा गुरु भाई होगा जिस पर कोई गुरु कृपा न हुई हो। यह बात अलग है कि गुरु कृपा का आभास किसी को हो या न हो। क्योंकि यह अनुभव उच्च कोटि के साधकों के बूते से भी बाहर की बात है। कई बार तो श्री सद्गुरुदेव महाराज द्वारा की गई कृपाएँ नियति के गर्भ में ही निहित हो कर रह जाती है। एक आदरणीय गुरु भाई ने कहा है कि—

बच्चे किसी हाल में है,
वे देखते रहते है।
बच्चों के भावों को वे,
पूरा करते रहते है।।

इसी प्रकार का एक प्रसंग आदरणीय गुरु भाई श्रीकृष्ण शर्मा जी ने दिनांक तीन-जुलाई 2012 को गुरु पूर्णिमा के दिन आराध्यदेव जी के दरबार धार्मिक नगरी ऋषिकेश आश्रम में सुनाया। श्री शर्मा जी मूल रूप से हरियाणा में जिला झज्जर के अन्तर्गत गाँव सिलोठी के रहने वाले है। वर्तमान में श्री शर्मा जी अपनी भार्या श्रीमति ललिता शर्मा और सुपुत्र पंकज शर्मा एवं प्रवीन शर्मा के साथ सागर पुर (पालम) दिल्ली में रह रहे है। गुरु भक्ति से ओत-प्रोत इस हरियाणवी दम्पति ने सन् 1980 में अपने स्थानीय आश्रम आर.के. पुरम में गुरु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से योग दीक्षा ग्रहण की थी। श्री शर्मा जी जो अपनी मधुर भाषा के लिए जाने जाते है, गत वर्ष सन् 2011 में डी.टी.सी. से फोर मैन के पद से सेवा निवृत हुए है।

प्रस्तुत कृपा प्रसंग दिनांक 20 मार्च सन् 2007 का है। इस दिल दहला देने वाले प्रसंग से यह सहज ही समझ में आ जाना चाहिए कि श्री सद्गुरुदेव भगवान एवं दीक्षित शिष्यों का परस्पर अत्यन्त प्रगाढ़ होता है। इस कथानक का संयोग ऐसे बना कि श्री शर्मा जी अपने मकान की मरम्मत करवा रहे थे। घटना के दिन शर्मा जी की धर्म पत्नी श्रीमति ललिता देवी मकान की छत पर जाकर कार्यरत लेबर को सावधान करती घूम-फिर रही थी कि इधर का जाल खुला हुआ है अतः कोई इस तरफ मत आना, कदाचित दुर्घटना हो सकती है। कहावत भी है कि

सावधानी हटी और दुर्घटना घटी।

मगर होता वही है – जो खुदा मन्जुरे होता है।।

लेकिन बहिन जी स्वयं को न संभाल पाई और रे... रे... रे... रे धड़ाम से नीचे गिर कर बेहोश हो गई। कोहराम मच गया। होश उड़ गए। शर्मा जी कि कर्तव्य विमूढ़ अवस्था में पहुँच गए।

किसके दिल पर क्या गुजरी,
कोई अनजान क्या जाने?
दु:ख दर्द उसे होता है,
कोई नादान क्या जाने?

इसी उहा–पोह के मध्य श्रीमति ललिता को दीनदयाल उपाध्याय अस्पताल ले जाया गया। संकट की घड़ी में संकट मोचन की याद आना तो स्वाभाविक ही है। यह भी है कि जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता। अत: प्रार्थना के स्वर स्वत: चलने लगे कि –

दया करो गुरुदेव – हम पर दया करो।
ललिता पड़ी अचेत – आ कर प्राण भरो।।
भीलनी जैसे धर्म नहीं हैं – मीरां जैसे भजन नहीं हैं
हे अखण्ड मण्डलाकार – मुझ पर दया करो।
दया करो .....

कितनों को तूने जीवन दान दिया है
घनेरों को तूने अभय किया है
हे सिद्धों के सरदार, हम पर दया करो
दया करो ....

आकर देवी के प्राण बचा लो,
अपनी शरण में हम को बैठा लो
हे कलि–काल अवतार, हम पर दया करो
दया करो ....

उधर दीनदयाल अस्पताल के डॉक्टरों ने मरीज की स्थिति भांप कर श्रीमति ललिता को सफदर जंग अस्पताल में रैफर कर दिया। इस बात से अपने शर्मा जी और भयभीत हो गए। किसी तरह स्वयं को सम्भालते हुए, डॉक्टरों से प्रार्थना की कि कृपया प्राथमिक उपचार तो कर दीजिए – ऐसा न हो जाय कि यह सफदरजंग अस्पताल जाते–जाते मार्ग में दम तोड़ दें। ....
.इत्यादि।

फिकर मत कर बावरे – मत कर मन में सोच।
गुरुदेव का ध्यान कर – छोड़ सभी संकोच।।

गुरु कृपा के चलते डॉ. टीम में सहमती बन गई और तुरन्त निरीक्षण प्रारम्भ हो गए। लीलाधारी की लीला से प्रत्येक टैस्ट रिपोर्ट नॉर्मल आ रही थी। मगर पेशेन्ट बेहोश क्यों? एम.आर.आई. करवाया गया, परन्तु डॉ. को कुछ समझ नहीं आ रहा था कि राज क्या है? अन्ततः ऑर्थो-न्यूरोलॉजिस्ट को केस रैफर कर दिया गया। एम.आर.आई. जाँच रिपोर्ट एवं तमाम जाँच-ध्यान के पश्चात् डॉ. साहिब ने हड्डी के फ्रैक्चर से तो इन्कार किया, मगर किसी परिणाम तक नहीं पहुँच पाए। इधर गुरुदेव से कृपा की भीख बराबर माँगी जा रही थी। अन्ततः आ गई लहर शिवा के मन में। श्रीमती ललिता देवी को होश आ गया – आँखें खोल दी, बोलिए –

गुरुदेव जय जय – सद्गुरु जय जय। अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय ।।

जिस प्रकार लक्ष्मण भ्राता की मूर्छा टूटने पर भगवान राम के शिविर में खुशी की लहर उछल रही थी। उसी प्रकार जगदीश शर्मा परिवार भी खुशी से झूम उठा।

ललिता को सेवा देने वाले, शर्मा को कोई गम ना रहे।
हम करते हैं कामना प्रभु, हर गुरु भाई सलामत रहे।।

इस उपस्थिति में शर्मा जी के प्रिय साधु एवं हमारे आदरणीय गुरु भाई श्री रामफूल जी थे। श्री रामफूल के विषय में बात करते चलें कि ये भाई जी अपनी धर्मपत्नि के साथ आर.के. पुरम आश्रम में रह कर इन दिनों चारों हाथों से आश्रम की सेवा एवं साधना करके वाहि-वाहि लूट रहे थे। आराध्यदेव गुरु महाराज ने रीझ कर इस दम्पती पर अपनी कृपा के इतने आनन्द बरसाए कि श्रीमानों की झोली ही छोटी पड़ गई। इस भाग्यशाली भाई रामफूल ने अपना स्वप्न बतलाया कि आलोक पावन स्वयं नारायण महाप्रभु बाबा रामलाल जी महाराज एवं करुणा निधान गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज श्रीमति ललिता देवी को विमान द्वारा गगन विचरण करा रहे थे। कितना भाग्यशाली परिवार है कि बहन जी का न ऑपरेशन, न उपचार, खरीच तक न आई और विमान की सैर इनाम में मिली। इन दोनों श्रद्धालु परिवारों को मेरा शत-शत नमन और गुरु चरणों में बोलिए –

गुरु चन्द्र मोहन कोई और नहीं – ये सिद्ध गुरु हमारे हैं
मात यशोदा की गोदी खेले – ये ही नन्द दुलारे हैं
यमुना किनारे गऊ चराई – ये काले कम्बल वाले हैं
कुंज में जो तान सुनाई – ये वो ही बंसी वाले हैं
बड़े संस्कार से मिले गुरु जी – यू आपन सदा बलिहारी।
गुरु चन्द्र मोहन वाले – करण तपस्या बड़ी भारी।
जय गुरु देव

• • •

सिद्धयोगाधिपति श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी

– अवनीश भटनागर, सहारनपुर

सद्गुरु रूपेण भूतले प्रकटयित्वा संस्कारी भक्तानां।
कल्याण कारक: चन्द्रमोहन भगवते नमो नम:।।

सद्गुरु के रूप में भूमि पर प्रकट होने वाले, संस्कारी आत्माओं का परम कल्याण करने वाले भगवद् रूप श्री चन्द्रमोहन भगवान को बारम्बार नमस्कार।

सिद्धों के महासिद्ध सकल योग ऐश्वर्य के अधिपति योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी एक ऐसे सर्व सिद्ध स्वतन्त्र ईश्वर तारनहार सद्गुरु का पावन नाम है जिन्होंने सर्वशक्ति सम्पन्न होते हुए सर्वज्ञ होते हुए सर्वोत्कृष्ट होते हुए भी कभी अपनी प्रभुता को सामान्य जन के समक्ष प्रकट प्राय: नहीं किया। उनके निकट या दूर रहने वाले नहीं जान पाये कि स्वयं परब्रह्म परम पिता परमेश्वर हमारे मध्य मानव वेष में विराजमान हैं। यदि थोड़ी मात्रा में कभी अलौकिक लीलाओं को देखकर कभी दिव्य भाव आया भी पर अधिकांशत: सदैव भक्तों में उनके प्रति मानवीय भावना ही अधिक रही ध्यान आदि में दिव्य प्रेरणा या दिव्य भाव से यदि कभी उनके प्रति भक्तों का दिव्य भगवद् भाव बन भी गया तो भक्तों ने संसारी कार्य ही अधिक सिद्ध कराये आत्म उत्थान, आत्म कल्याण ना के बराबर ही कराया। ध्यान का प्रसाद तो बहुत लोग मांगते थे पर ध्यानाभ्यास कर नित्य ध्यान में बैठने वाले कोई–कोई होते थे। श्री सद्गुरुदेव जी बराबर कहते रहे कि ध्यान में नित्य बैठा करो गुरु मन्त्र जप निरंतर किया करो अनुष्ठान किया करो। परन्तु अधिकांश भक्त निष्क्रिय ही रहे जबकि गली–गली दर–दर भगवान को ढूंढने वाले भक्तों के सामने भगवान मानव वेष में विचरते रहे परन्तु उनके प्रति वह भगवद् भावना नहीं जगा सके। बस बिना करे मिल जाये, श्री गुरुदेव शक्ति संचारित पुष्प प्रसाद दे दें हमारा कार्य बन जाये बस इसी भावना तक ही अधिकांश लोग सीमित रह गये।

योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी विलक्षण हैं उनका कृपा करने का तरीका निराला है। वह जब किसी को कृपा प्रदान करते हैं तो निहाल और मालामाल दोनों करते हैं साथ ही उसके जन्म जन्मान्तरों के कर्मों का क्षय भी करते जाते हैं और साथ ही कोई नया कर्मबंधन भी उसके नहीं बंधने देते उस जीव के आस–पास का वातावरण भी दिव्य बना डालते हैं उनके भक्त के सम्पर्क में आने वाले जीवों के भी कल्याण हो जाते हैं। जब वह कृपा करते हैं तो प्रत्यक्ष खड़े होकर या स्वप्न में प्रकट होकर, अन्तर्प्रेरणा करके किसी व्यक्ति के द्वारा वह बात करा देते हैं। जिससे भक्त का कल्याण हो जाता है। अनेक स्वरूप धारण करके (रूप बदल कर) भी कृपा करते हैं उनके पास अनेकों तरीके हैं। बस कृपा लेने वाला चाहिए और उसका भाग्य (प्रारब्ध कर्म) उत्तम होना चाहिए यदि प्रारब्ध किलिष्ट है तो पहले उसी का भुगतान होगा।

महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने अपने चरणों में आने वाले जीवों की पात्रता को देख लिया कि कौन संस्कारी है उनको ध्यान समाधि के मार्ग द्वारा अध्यात्म की प्राप्ति कराई, शेष में किसी को भजन संकीर्तन द्वारा, किसी को गुरु सेवा, आश्रम सेवा किन्हीं को योग साधन क्रियाओं द्वारा, किसी को संगीत, भजन रचना, साहित्य रचना, किसी को व्रत, अनुष्ठान, गुरुमन्त्र जप किन्हीं को यौगिक सत्संग आयोजन, किसी को श्री प्रभुजी की आरती पूजा आदि साधनों द्वारा आध्यात्मिक मार्ग की उपलब्धि कराई। इसी पथिक योगिश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी की अमर सिद्धयोग शिक्षा को आत्मसात करके श्री सद्गुरुदेव जी के दिशा निर्देशन में उनके द्वारा प्रदत्त प्रकाश को पाकर किसी भी प्रकार से योगारूढ़ हो पाये व अपने आत्म कल्याण में साधक बनकर उन्नति करते-करते सद्गुरु कृपा से परम लक्ष्य को प्राप्त कर पायें इसी में जीव की भलाई है। यही गुरुदेव का उद्देश्य रहा।

योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने वह ईश्वरीय प्रकाश जग को प्रदान किया। जिससे सदियों तक आध्यात्मिकता की ज्योति प्रचण्ड ज्वाला की भाँति प्रज्वलित होती रहेगी और उससे भक्त जन लाभ लेते रहेंगे। महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ऐसी ईश्वरीय विभूति हमारे मध्य विराजमान रहे, जिनके स्मरण, पूजन, वन्दन, आज्ञापालन, चरण सेवा आदि से वैसे ही आध्यात्मिक उत्थान होने लगता था और यदि कहीं उनके जीवन में अपने किसी सुकृत्य से स्थान बना लिया और उनके सिद्ध संकल्प में आ गया तो उसका तो कहना ही क्या वह जीव वर्तमान या जन्मान्तर में अवश्य योगारूढ़ होकर रहेगा। बड़े विराट पुण्यों के बल पर ऐसे सद्गुरु का सानिध्य प्राप्त होता है फिर वह शरणागत जीवों को पात्रता के हिसाब से योग में उन्नति प्रदान करते रहते हैं। योगिराज श्री देवरहा बाबा जी ने किसी समय कहा था कि श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पास तो ऐसे व्यक्ति ही रह सकते हैं। जिनकी कुण्डलिनी जागृत हो चुकी हो और षट्चक्र भेदन हो गया हो, साधारण व्यक्ति तो उनके पास नहीं रह सकता। सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी ने योग के उस पक्ष को जनमानस के सामने लाकर रखा जिस पक्ष को करने कराने वाले लोग संसार में दुर्लभ है। तप, स्वाध्याय, आसन, मुद्रायें त्राटक आदि के अतिरिक्त कुण्डलिनी जागरण षट्चक्र भेदन, ध्यान, समाधि, आत्म साक्षात्कार, मोक्ष आदि सभी साधन कृपा करके जगत को प्रदान किये और उनकी प्राप्ति का सुगम मार्ग भी बताया। उन्होंने अपनी परम दिव्य शक्ति से रोगियों का रोग निवारण, निर्धनों को धन प्राप्ति के अवसर, बांझन को संतान, पुत्र इच्छा वालों को पुत्र प्राप्ति कराई, रोजगार हीन व्यक्तियों को उचित रोजगार नौकरी आदि, ईश्वर प्राप्ति की इच्छा वालों को ईश्वर दर्शन, ध्यान समाधि की इच्छावालों को ध्यान समाधि, आत्मसाक्षात्कार वालों को आत्मसाक्षात्कार कराया, योग के इच्छुक व्यक्तियों को योग का ज्ञान दिया आदि-आदि कार्य जनकल्याण की भावना से अपने परम शक्ति युक्त सिद्ध संकल्प से करते रहे और यह जनकल्याण नित्य जारी है।

योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी योग के ऐश्वर्य से पूर्णतः विभूषित हैं। योग की सिद्धियाँ

उनके साथ रही। उनके जीवन में स्पष्ट रुप से अनेक सिद्धियों का दर्शन होता रहा, उनके विज्ञ बालक सब कुछ देख सुनकर भी अनभिज्ञ ही बने रहे अब वर्तमान में भी जिन अनभिज्ञ लोगों ने श्री सद्गुरु देवजी की कृपा से ही विज्ञता प्राप्त की थी वह भी कभी योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी के दिव्य चरित्र पर लेखनी नहीं चला पा रहे है जाने क्या-क्या लिख डालते है पर श्री गुरु चरित्र पर नहीं लिखते। अपने को बनाने वाले चमकाने वाले श्री सद्गुरुदेव जी के लिये शायद समय ही नहीं। श्री सद्गुरु देवजी के बालकों में ना ज्ञान की कमी है ना नाम की ना ही लेखकों की कमी है परन्तु पता नहीं उनके बालक अपने प्यारे गुरुदेव के दिव्य एवं प्रेरणादायी जीवन चरित्र को प्राय: लेखन का विषय नहीं बनाया करते पता नहीं क्यों। जाने क्या-क्या लिखा करते हैं हो सकता है उससे जगत में उनकी ख्याति हो जाती हो। जबकि अनेक महामना गुरुभाई अनेक दिव्य गुरुलीलाओं के साक्षी हैं। ऐसे विज्ञ गुरुभाइयों को चाहिए कि उन दिव्य गुरु कृपाओं को लिपिबद्ध करें या करायें और सिद्धयोग मासिक पत्रिका में प्रकाशन हेतु प्रेषित कर दें और जन प्रेरणा के भागीदार बन कर गुरुकृपा का लाभ प्राप्त करें।

योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी का दिव्य जीवन योग ऐश्वर्य (सिद्धियों) से विभूषित रहा उनके दिव्य जीवन में योग ऐश्वर्य की पूरी-पूरी झलक दृष्टिगोचर होती है। संकल्प करते ही योग की सिद्धियाँ उनके संकल्पपूर्ति के लिए क्रियाशील हो जाती थीं यदि श्री चन्द्रमोहन जी का सिद्धसंकल्प किसी कार्य पूर्ति के लिए हो जाता था तो वह कार्य त्रिलोकी में कोई रोकने वाला नहीं था। उनका संकल्प सिद्ध एवम् अमोघ रहा, देवी, देवता, सिद्ध, ऋषि, योगी, तपस्वी आदि दिव्य व्यक्तित्व भी उनके अमोघ सिद्ध संकल्प का पुण्य प्रसाद लेकर दिव्य लाभ प्राप्त किया करते थे साधारण मनुष्यों की तो बात क्या कहें।

योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी संकल्प सिद्ध महायोगेश्वर थे। उन्होंने जिसके लिये जो संकल्प बना लिया उसको काटने वाला कोई देखा नहीं गया उनकी अनेकों-अनेकों लीलाओं में, आकाश गमन, कायाव्यूह की रचना करके जनकल्याण अनेकों स्थानों पर प्रकट होकर करना, आदरणीय भाई श्री पुष्कर दत्त जी को चलती गाड़ी में से कूदते ही तत्काल आकाश में प्रकट होकर वायु की गति से पकड़कर सकुशल जमीन पर उतार दिया था और भाई जी की प्राण रक्षा की जबकि श्री सद्गुरुदेव जी उस समय सवाई धाम में विराजमान थे। अनेकर बार मृतक जीवों पर शक्तिसंचार करके जीवन दान दिया। दूर की बातों को सुन लेना, देख लेना और वहाँ प्रकट होकर कृपा कर देना जैसे टाट बाबा रघुनन्दन प्रसाद के श्री सिद्धगुफा पर पहुँचते ही योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी ने चंडी पर्वत हरिद्वार जहाँ वह समाधिस्थ थे वहीं से देख लिया था और कुछ ही समय पश्चात संभवत: वायुमार्ग से तत्काल श्री सिद्धगुफा पर प्रकट होकर टाटबाबा को दीक्षा दी थी। ईश्वर की भांति उनका कृपा कर कमल सदा भक्तों का कल्याण करता रहा। ईशित्व और वशित्व सिद्धियों से दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति भी उनके शरणागत होकर उनके अनुकूल कार्य करने लगता था। श्री राम, श्री कृष्ण, गणेशजी, शिवभगवान आदि

भगवत् स्वरूपों में भी भक्तों ने अनेकों बार उनके दिव्य दर्शन प्राप्त किये। बड़े गुरुभाई महात्मा अभिनन्दन जी ने योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी का विराट रूप देखा था उन्होंने बताया था कि श्री गुरुदेव जी का शरीर अति विशाल है उनके श्री चरण इतने विशाल हैं कि सारे शिष्य लाखों की संख्या में उनके चरणों में चिपके हुए हैं। इनमें महिमा सिद्धि के दर्शन होते हैं। हरियाणा के किसी गाँव में श्री चन्द्रमोहन जी ने गहरे तालाब के भीतर जल में समाधि लगाई थी और भक्तों की प्रार्थना पर पुनः पानी के ऊपर प्रकट होकर धोती का पल्ला बिछाकर दर्शन देते रहे न धोती डूबी और न श्री गुरुदेव। हिंसक वानरों को भी अपने अनुसार चलाया जब गुरुदेव ने कहा तब ही सब वानरों ने चने खाये। जरूरत पड़ी तो सिद्ध संकल्प से चलती गाड़ियों को भी रोक दिया।

वेदशास्त्र कहते हैं देवता व सिद्ध भी उनके दर्शनों को तरसते हैं। पूर्णतः तो नहीं पर जो जितना उनके विषय में जान सका उतने मस्त रहे जो उनके दिव्य विभूति दर्शन में व्यस्त रहे उनकी आज्ञापालन व गुरुधाम सेवा में और सिद्धहस्त हो उनकी योग विद्या में श्री गुरुदेव जी के प्यारे भक्तों मानव देह में प्रकट होकर भगवद्स्वरूप ने हमें हाथ बढ़ा कर अपनाया। अब तो हमें अपनी मनोदशा सुधार कर श्री गुरुचरणों में समर्पित हो ही जाना चाहिए।

● ● ●

शोक संवेदना

हमारे खैर निवासी डा. रघुवीर शरण भारद्वाज की धर्मपत्नी का 23 सितम्बर 2012 को देहावसान हो गया है। वे लम्बे समय से लीवर कैंसर से पीड़ित थे। उनके निधन से भारद्वाज परिवार शोकाकुल है। श्री प्रभु जी दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान दें तथा शोक संतप्त परिवार को परिवार की इस दुःख को सहन करने की ताकत दें। स्मरण रहे श्री डॉ. भारद्वाज जी कई वर्षों से श्री सिद्ध गुफा सफाई धाम में रहकर सेवा कार्य में लगे हुए हैं।

शोकाकुल
सभी आश्रमवासी सत्संगीगण

हमारे हृदय सम्राट योगिराज गुरुदेव

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

इस धराधाम का एक पर्याय वसुन्धरा अथवा रत्नगर्भा है। युगानुरूप जनकल्याण के निमित्त इस धरणी के आंगन में अवतारी महापुरुषों का पदार्पण होता रहा। एक से बढ़कर एक सद्गुणों से अलंकृत नवरत्नों की सृष्टि इस धरणी तल पर सदा से होती आ रही है। वे ही महापुरुष समय–समय पर ऐसे क्रियाकलाप किया करते हैं जो शताब्दियों तक पथभ्रष्ट व्यक्तियों को सन्मार्गगामी बना उनमें दिव्य विचारों का संचार कर, प्रमाण भूत अपने पदचिन्हों का अनुगामी बना, जगत के कल्याणार्थ ही इस शरीर का वरण करते हैं। ऐसे ही महापुरुषों की अग्रिम पंक्ति को सुशोभित करने वाले, योग के मूर्तिमान् विग्रह, अपनी जन्म स्थली अलूपुर को धन्य कर अनन्त श्री समलंकृत व महिमामण्डित पावन चरित स्वनामधन्य, प्रातः स्मरणीय श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अवतरित हुए। दिव्य पुरुषों का अवतरण भी विशिष्ट महत्व का समय हुआ करता है। श्री गुरुदेव आश्विन शुक्लदशमी को इस धरणी तल पर अवतीर्ण हुए। यह तिथि ज्योतिष शास्त्रोक्त चार सिद्ध मुहुर्तों में से एक प्रसिद्ध है। इस तिथि काल में किसी मुहुर्त के विचार की आवश्यकता नहीं रहती है।

युग पुरुषों की महिमा अलौकिक हुआ करती है। वे किसी कार्य विशेष की पूर्ति के निमित्त अवतरित होते हैं और लक्ष्य की पूर्ति के पश्चात् लोकान्तरित होते हैं। हमारे हृदयसम्राट का मुख्य प्रयोजन व ध्येय योग प्रकार का अधिकाधिक प्रसार रहा है। हमारे धर्मशास्त्रों में पुरुषार्थ चतुष्टय अथवा धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सर्वत्र विवेचना व विशद् व्याख्या हुई है। इस मनुष्य जीवन में पुरुषार्थचतुष्टय की सम्पूर्ति को ही सर्वोत्तम साधन के रूप में स्वीकार किया गया है और यह भी स्वतः सिद्ध तथ्य है कि शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् – इस शरीर के द्वारा ही हम सर्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं। यदि हमारा तन स्वथ है तो मन भी स्वस्थ विचारों से युक्त रह सकता है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि किसी भी कार्य की सिद्धि में हमारे स्वस्थ तन व मन की प्रधानता ही विशेष रूप से सहायक रहती है।

''योग'' शब्द का इतना व्यापक अर्थ है जिसे व्याख्यायित करने में महर्षि पतंजलि ने एक शास्त्र योगशास्त्र रच डाला। इस विस्तृत अर्थयुक्त, शब्द को आधुनिक मनीषियों ने मात्र हाथ पैर चलाने तक ही सीमित कर दिया है और साथ ही हमारे शुद्ध व सत्य शब्द को ''योगा'' बनाकर इसकी एक अलग ही पहचान बना डाली है। अस्तु! मेरा कहने का तात्पर्य मात्र यही है कि इस योग पद्धति के माध्यम से, जिसे ''अष्टांग योग'' के नाम से जाना जाता है हम जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय सरलता व सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। मनुष्य जीवन का अभीष्ट लक्ष्य भी हमारे मनीषी सन्तों ने यही निर्धारित किया है।

आज हमारे गुरुवर का अवतरण का वह पावन दिवस है जिसने हमें एक सर्वसमर्थ सिद्धयोगी के संस्कारों से सम्बद्ध कर हमारे जीवन को धन्य व कृतार्थ किया है। हम अपनी जीवन शैली में एक शुभ परिवर्तन को धारण कर स्वयं तो कृतकृत्य हुए ही हैं और उसने हमें ऐसा सम्बल व सामर्थ्य दे दिया है कि हम अपने जैसे अनेकों को कृतार्थता प्रदान कर सकें। वास्तव में, यह पावन दिन हम सबके कल्याण एवं श्रेयस् से भरा आह्लाद-दिन है।

श्रीगुरुदेव के पावन जीवन चरित्र व प्रसंगों को हमने अपने सभी अनेक बार सुना है व पढ़ा भी है। वे हमारे स्मृति-पटल पर अंकित होकर हमें सदा मार्गदर्शन करते रहते हैं। मैं इस लेख के माध्यम से श्रीगुरुदेव के सान्निध्य व उनके साक्षात् दर्शन का यत्किंचित सौभाग्य प्राप्त होता रहा और उसमें मैंने उनके अनुयायी-शिष्य के नाते जो विशिष्ट रूप देखा उसको मैं शब्दबद्ध करने का प्रयास करना चाहूंगा।

सर्वप्रथम श्री गुरुदेव श्री के श्री चरणों में नमन व क्षमापन करते हुए यह निवेदन करूंगा कि हमारे श्री गुरुदेव श्रीमद्भगवद्गीता तथा पातञ्जल योग शास्त्र के परमानुरागी रहे। इसका कारण उनका मुख्य ध्येय योग प्रचार था अतएव दोनों ही ग्रन्थ योगपरक रहे। श्रीमद्भगवद्गीता के दो अध्यायों का प्रतिदिन मूल-पाठ और तदनन्तर अपने प्रवचनों में उसकी विशेष व्याख्या तथा पातञ्जल योग शास्त्र के सूत्रों को आधार बनाते हुए उसकी सरल सुगम सोदाहरण व्याख्या यह उनकी उस विषय-विशेष में गहरी पैठ के साथ उस-उस विषय विशेष में आसक्तशीलता व अनुरागपरता का ज्वलन्त निदर्शन है।

श्रीमद्भगवद्गीता के 18वें अध्याय का पांचवां श्लोक इस प्रकार है –

यज्ञदानतप कर्म, न त्याज्यं कार्यमेवतत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्।।

इसका अर्थ है कि यज्ञ, दान, तपस्या के कर्म ये छोड़ने नहीं चाहिए अपितु अवश्यमेव करते रहने चाहिए। यज्ञ, दान तथा तप ये मनीषियों को पावन करने वाले हुआ करते हैं।

हमारे गुरुदेव ने गीतोक्त इस कथन का सतत निर्वाह अपने जीवन काल में किया है।

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के अन्तर्गत 14, 15 व 16वें श्लोक का अनुशीलन भी हमें श्रीगुरुदेव की गीतोक्त सिद्धान्तों पर समाश्रित आचरण शीलता की ओर स्पष्ट संकेत करते हैं –

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजन शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तपउच्यते।।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः।
भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।

अर्थात इन तीनों श्लोकों में शारीरिक वाचिक व मानसिक तप का उल्लेख करते हुए – इन तीनों में निहित गुणों का उल्लेख हुआ है।

शारीरिक तप में – देवता, ब्राह्मण, गुरु, प्रज्ञावानुपुरुष का सत्कार–पूजन, शारीरिक आन्तर एवं बाहरी शुद्धि, सरलता, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा–गुणों से सम्पन्न व्यक्ति का यह शारीरिक तप कहलाता है।

वाङ्मय तप अथवा वाचिक तप

ऐसी वाणी बोलना जो दूसरे को गुस्सा या उत्तेजना न दिलाये सच बोलना और प्रिय व हितकर वचन ही बोलना, स्वाध्याय, मनन व अभ्यसन करते रहना यह वाचिक तप कहलाता है।

मानसिक तप – मन की प्रसन्नता, सौम्यभाव, मौन धारण करना, आत्मसंयम करना, भावों को शुद्ध बनाये रखना ये सब मानसिक तप के अन्तर्गत गुण होते हैं।

अब उपरिवर्णित विवेचन के साथ यदि हम अपने सद्गुरुदेव से मिलान करें तो बताइये हमारे गुरुदेव में इन सब उल्लिखित बातों में क्या नहीं था। यही उनके आकर्षण का केंद्र था। एक बार किसी को अपनी प्रसाद पूर्ण दृष्टि से देखकर 'लाला' या लाली' के सम्बोधन से उसकी सारी मनोव्यथा क्या कोई साधारण पुरुष हरण करने की सामर्थ्य ला सकता है। उनका यह तपश्चर्यापूर्ण सम्पूर्ण जीवन उनकी वाणी को सिद्ध संकल्प और सिद्धार्थ बना चुका था। वे परम तपस्वी अपने गुरु में श्रद्धा व भक्ति में अनन्य व्रती, हृष्टपुष्ट काया, सौम्य आकृति सदा मुस्कराहट भरी वाणी ये क्या किसी साधारण पुरुष की उपलब्धियां हैं।

मेरा तो यह मत है कि एक महान व्यक्तित्व को मुझ सरीखे अल्पमति का उद्घोषित करना वैसे ही है जैसे कोई एक बौना आकाश को अपने दोनों हाथ उठाकर छूने का प्रयास कर बैठे। पर चूंकि मुझे श्री गुरुदेव के सान्निध्य का परम सौभाग्य वर्षों तक मिला है और उन समर्थ गुरु के शिष्य होने से गौरवान्वित मैं उनके गुणगान में अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यत्किंचित भी दुस्साहस कर सका हूँ इस धृष्टता की क्षमा याचना के साथ सुधी पाठकों के मध्य इस लेख को समर्पित करते हुए श्री गुरुदेव के इस पावन जन्म दिवस पर उनके स्थापित मानकों को यदि हम किंचित मात्र भी अपना सके, तो जीवन हमारा सार्थक व सफल होगा इसमें संशयलेश नहीं है।

जय गुरुदेव!

● ● ●

षड्दर्शन समन्वय

– जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर (म.प्र.)

(1) **कर्मकाण्ड** – वेदमन्त्रों में कर्तव्य कर्मों अर्थात् इष्ट और पूर्त कर्मों की शिक्षा का नाम कर्मकाण्ड है। 1. इष्ट वे कर्म है, जिनकी विधि मन्त्रों में दी गई हो, जैसे यज्ञादि और 2. पूर्त वे सामाजिक कर्म है जैसे धर्मशाला कूप, विद्यालय, अनाथाश्रम आदि बनाना इत्यादि। उपर्युक्त दोनों कर्मों के तीन अवान्तर भेद है – नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म और काम्य कर्म।

(क) नित्यकर्म जो नित्य करने योग्य है, जैसे पंचमहायज्ञ।

(ख) नैमित्तिक कर्म वे कर्म है जो किसी निमित्त के होने पर किये जायें जैसे पुत्र के जन्म होने पर जातकर्म संस्कार।

(ग) काम्य कर्म जो किसी लौकिक अथवा पारलौकिक कामनाओं से किये जावें। इनके अतिरिक्त (1) निषिद्ध कर्म (2) प्रायश्चित्त कर्म। जो विहित कर्म के न करने अथवा निषिद्ध करने या वर्जित कर्म करने से अन्तःकरण पर मलिन संस्कार पड़ जाते है, उनके धोने के लिए किए जावें।

(2) **उपासना काण्ड** – वेद मन्त्रों में बतलाई हुई तल्लीनता अर्थात् मन की वृत्तियों को सब ओर से हटाकर केवल एक लक्ष्य पर ठहराने की शिक्षा का नाम उपासना है।

(3) **ज्ञान काण्ड** – वेदमंत्रों में जहाँ–जहाँ आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है, उसको ज्ञान काण्ड कहते है। ज्ञानकाण्ड का वर्णन आरण्यकों तथा उपनिषदों में किया गया है। ज्ञानकाण्ड और उपासना काण्ड का वर्णन ज्ञानकाण्ड और उपासना काण्ड दोनों में किया गया है।

(4) **मीमांसा** – उपासना, ज्ञानकाण्ड और मीमांसा काण्ड के वेदार्थ विषयक विचार को मीमांसा कहते है।

मीमांसा के दो भेद है – (1) पूर्व मीमांसा (2) उत्तर मीमांसा। उपासना दोनों में सम्मिलित है।

(क) पूर्व मीमांसा में कर्मकाण्ड का (ख) उत्तर मीमांसा में ज्ञान काण्ड पर विचार किया गया है।

पूर्व मीमांसा वेदव्यास जी के शिष्य जैमिनि मुनि ने प्रवृत्ति मार्गी गृहस्थियों तथा कर्मकाण्डियों के लिये बनाई है। उत्तर मीमांसा निवृत्ति मार्ग वाले ज्ञानियों तथा सन्यासियों के लिए श्री व्यास जी ने स्वयं रचा है।

पूर्व मीमांसा

पूर्व मीमांसा के पांच महायज्ञों का करना प्रत्येक ग्रहस्थी को करना आवश्यक है। (1) ब्रह्मयज्ञ–प्रात: और सायंकाल की सन्ध्या और स्वाध्याय। (2) देवयज्ञ – प्रात: तथा सायंकाल का हवन करना (3) देवयज्ञ – देव और पितरों की पूजा अर्थात् माता–पिता, गुरु आदि की सेवा तथा उनके प्रति श्रद्धा भक्ति। (4) बलिवैश्वदेव यज्ञ – पकाये हुए अन्न में से अन्य प्राणियों के लिए भाग निकालना। (5) अतिथि यज्ञ – घर पर आये हुए अतिथियों का सत्कार करना।

सहयज्ञा प्रजा: सृष्टा पुरोवाच प्रजापति:।
अनेन प्रसविष्यदृयमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।। गीता
देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व:।
परस्परं भावयन्त: श्रेय: परमवाप्स्म था।। गीता
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता:
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव स: ।। गीता
यज्ञशिष्टाशिन: सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषै:
भुज्जते ते त्वध्यं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।। गीता
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भव:
यज्ञाद्भवनि पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव:।। गीता
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम्
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।। गीता

(5) उत्तर मीमांसा – उत्तरमीमांसा को ब्रह्मसूत्र, शारीरिक सूत्र तथा वेद का अन्तिम तात्पर्य बतलाने से वेदान्त दर्शन और वेद मीमांसा भी कहते है। इस दर्शन के चार अध्याय हैं। (क) समन्वय अध्याय (ख) अविरोध अध्याय (ग) साधन अध्याय (घ) फलाध्याय।

इसमें (1) ईश्वर (2) प्रकृति (3) जीवात्मा (4) पुनर्जन्म (5) मरने की पीछे की अवस्थाएं (6) कर्म (7) उपासना (8) ज्ञान (9) बन्ध (10) मोक्ष

इस दर्शन के अनुसार–

(1) हेय अर्थात् त्याज्य जो दुःख है।

(2) हेय हेतु–अहंता–ममता ही दुख का कारण है।

(3) हान–दुःख के नितान्त अभाव की अवस्था 'अर्थात् स्वरुपस्थिति।'

(4) हानेपाय – उपाय परमात्मतत्व' का ज्ञान है।

अद्वैतवादी जड़तत्व की सत्ता परमात्मतत्व से भिन्न नहीं मानते, उसी में आरोपित मानते हैं। जैसे रस्सी में सांप और सीप में चांदी की सत्ता आरोपित है, वास्तविक नहीं। इस

प्रकार अद्वैतवादी जगत् को 'अनिर्वचनीय माया' अथवा 'अविद्या' मानते हैं, जो न सत् है और न असत्। सत् इस कारण नहीं कि मुक्ति या स्वरूपावस्थिति की अवस्था में उसका नितान्त अभाव हो जाता है। और असत् इसलिए नहीं कि सारा व्यवहार इसी में चल रहा है। किन्तु जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण ब्रह्म या चेतन तत्व ही है, क्योंकि माया ब्रह्म से अलग कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रखती, वह ब्रह्म की विशेष शक्ति है। ब्रह्म में कोई परिणाम नहीं होता, वह सदा एक रस रहता है, किन्तु भ्रम से बदला सा प्रतीत होता है। इसी को विवर्तवाद कहते हैं।

वेदान्त में ब्रह्म का दो प्रकार से वर्णन है। एक उसके शुद्ध स्वरूप का, जो प्रकृति से पृथक् अपना निजी निर्गुण केवल शुद्ध स्वरूप है। दूसरा प्रकृति के सम्बन्ध से, जो उसका शबल अपर, अथवा सगुण रूप है।

इस सगुण स्वरूप का भी समष्टि–व्यष्टि भेद से दो प्रकार का वर्णन है। अर्थात् सारे विश्व में उसकी महिमा का एक साथ देखना उसके समष्टि रूप का दर्शन है और उसके साथ उसका दर्शन समष्टि स्वरूप का है। इसके तीन भेद हैं।

(1) विराट (चेतन तत्व + जगत्)

(2) हिरण्यगर्भ (चेतन तत्व + सूक्ष्म जगत्)

(3) ईश्वर (चेतन तत्व + कारण जगत्)

वैशेषिक दर्शन

इस दर्शन का नाम वैशेषिक, काणाद और औलूक्य है। विशेष नामक पदार्थ की विशिष्ट कल्पना करने के कारण इसको वैशेषिक संज्ञा दी गई है। वैशेषिक का अर्थ है पदार्थों के भेदों का बोधक।

वैशेषिक दर्शन में हेय, हेतु, हान और हानोपाय इन चारों विषयों के समझने के लिये छह पदार्थ – (1) द्रव्य (2) गुण (3) कर्म (4) सामान्य (5) विशेष और (6) समवाय का निरूपण किया गया है। इन्हीं से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

नौ द्रव्य

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। ये नौ द्रव्य हैं।

(1) पृथ्वी में कारण रूप निरवयव सूक्ष्म परमाणु नित्य है। और कार्यरूप स्थूल भूमि अनित्य है। कारण रूप जल अनित्य है। पृथ्वी में गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, चार गुण हैं। इनमें गंध मुख्य है।

(2) जल की पहचान शीत स्पर्श है।

(3) अग्नि की पहिचान उष्ण स्पर्श है।

(4) वायु की पहिचान विलक्षण स्पर्श है।

इन चारों द्रव्यों से तीन प्रकार की वस्तुएँ बनती हैं (1) शरीर (2) इन्द्रिय और (3)

विषया। रसना (अनुभव करने वाली इन्द्रिय) जीभ है। नेत्रेन्द्रिय तेजस है। त्वचा इन्द्रिय वायवीय है। प्राणवायु भी वायुवीय विषय है।

(5) आकाश की पहिचान शब्द है। शब्द सर्वत्र है। अतएव आकाश विभुह और नित्य है। कर्ण–छिद्र के अन्दर आकाश श्रोत्र है।

(6) काल – यह उससे छोटा है वह उससे आयु में बड़ा है। इसका निमित्त काल है।

(7) दिशा – यह इससे, पूर्व है, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण है। यह दिशा है।

(8) आत्मा – आत्मा की पहिचान चैतन्य (ज्ञान) है। यह ज्ञान शरीर, मन, बुद्धि आदि का नहीं होता है। इन सबका अधिष्ठान आत्मा विभु है और नित्य है।

जिस प्रकार बाह्य रूप से ज्ञान के साधन नेत्रादि है। उसी प्रकार सुख–दुखादि के कारण मन है।

सांख्य और योग ने आत्मा को ज्ञान रूप तथा बुद्धि को आत्मा के निकटतम होने से आत्मा से प्रकाशित होती है। यद्यपि बुद्धि जड़ है। आत्मा बुद्धि की वृत्तियों का दृष्टा होता हुआ भी कूटस्थ और नित्य ही माना जाता है।

न्याय–दर्शन

न्याय दर्शन के रचयिता गौतम हैं।

प्रमाणों से अर्थ का परीक्षण अर्थात् विभिन्न प्रमाणों की सहायता से वस्तु की परीक्षा न्याय है।

प्रत्यक्ष और आगम के आश्रित अनुमान (न्याय) है। अनुमानों में परीक्षा करके अर्थ की सिद्धि की जाती है। परीक्षा प्रत्यक्ष प्रमाण से होती है।

न्याय दर्शन के अनुसार चार मुख्य प्रमाण है। (1) प्रत्यक्ष (2) अनुमान (3) उपमान (4) आगम

प्रत्यक्ष के दो भेद है – (1) निर्विकल्प (2) सविकल्प

वस्तु का आलोचना मात्र ज्ञान, जिसमें सम्बन्ध की प्रतीति नहीं होती है निर्विकल्प है और जिसमें सम्बन्ध की प्रतीति होती है। वह सविकल्प है।

योग दर्शन में "शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः" केवल शब्द के आधार पर बिना हुए पदार्थ की कल्पना करने की चित्त की वृत्ति है, वह विकल्पवृत्ति है।

जैसे – 'गौ' को देखकर यह ज्ञान हुआ कि यह 'गौ' है। अनुमान प्रमाण–कार्य–कारण के सम्बन्ध से जो ज्ञान होता है, उसे अनुमान कहते हैं।

उपमान प्रमाण – प्रसिद्ध–सादृश्य से संज्ञा–संज्ञी के सम्बन्ध का ज्ञान उपमान प्रमाण है। जैसे नीलगाय को नहीं जानता वह यह सुनकर गौ जैसी नील गाय वन में जाय और गौ समान व्यक्ति को देखे तो उसका यह ज्ञान होगा कि यह नील गाय है।

आगम प्रमाण – आप्त पुरुषों के उपदेशों को आगम प्रमाण कहते हैं। वैशेषिक और न्याय में बतलाए हुए चिन्ह आत्मा के धर्म नहीं हैं। यह आत्मा का शरीर के साथ अस्तित्व बतलाने के लिए केवल चिन्ह मात्र हैं।

इसी बात को गीता में बतलाया है–

नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥

अर्थात् सांख्ययोगी ऐसा मानकर मैं कुछ नहीं करता हूँ (यह तो 'गुण गुणों' में ही वर्तन कर रहे हैं।

वैशेषिक न्याय में योग साधन की शिक्षा –

इन दोनों शास्त्रों में आत्मा और परमात्मा का अस्तित्व प्रमाण और लक्षण से सिद्ध करने के पश्चात् इन दोनों दर्शनकारों ने योग साधन का ही सहारा लिया है।

आत्मन्यात्ममनसो: संयोग विशेषात् आत्म प्रत्यक्षम्–वैशेषिक अर्थात् आत्मा और मन के संयोग विशेष से आत्मा का प्रत्यक्ष होता है। तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः

अर्थात् मोक्ष के लिये यम और नियमों से तथा अध्यात्मविधि न्याय के उपायों द्वारा योग से आत्मा का संस्कार करना चाहिए जिससे मल–विक्षेप और आवरण को हटाया जाता है।

सांख्य और योग दर्शन

सांख्य और योग भारतवर्ष की प्राचीन वैदिक तथा वेदान्त दर्शन है। परमात्मा (चेतन तत्त्व) के निर्गुण शुद्ध स्वरूप का वर्णन उपनिषदों में विस्तारपूर्वक किया गया है। इसलिए उपनिषदों को वेदान्त कहते हैं। ज्ञान का अन्त अर्थात् जिसको जानने के बाद कुछ जानना शेष न रहे। योग और सांख्य में उसके जानने के साधन विशेष रूप से बतलाए गए हैं।

योगवासिष्ठ में ज्ञान को चित्त का नाश करने की दो निष्ठाएं बतलाई हैं। योग और सांख्य। योग चित्तवृत्तिनिरोध से प्राप्त किया जाता है और सांख्य सम्यक ज्ञान से। किसी के लिये योग कठिन होता है और किसी को सांख्य। इस कारण शिव ने योग और सांख्य दोनों ही मार्गों को बतलाया है।

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥
सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥ गीता 4

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।

एकं योगं च सांख्ये च यः पश्यति स पश्यति।। गीता 5

जिस प्रकार सत्व, रज और तम – इन तीनों गुणों में से प्रत्येक गुण बिना अन्य दो की सहायता के अपना कोई कार्य स्वतन्त्र रूप से प्रारम्भ नहीं कर सकते उस प्रकार ज्ञान, कर्म और उपासना भी अपने-अपने कार्य में परस्पर एक दूसरे के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। सांख्य निष्ठा में ज्ञान प्रधान है तथा कर्म और उपासना गौण एवं योग निष्ठा में कर्म उपासना की प्रधानता है।

सांख्य और योग आरम्भ में एक ही स्थान से चलते हैं और अन्त में एक ही स्थान पर मिल जाते हैं।

योग द्वारा अन्तर्मुख होना –

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार – ये पांच वहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान और समाधि अंतरंग साधन हैं।

सांख्य द्वारा अन्तर्मुख होना –

अष्टांग योग के पहले पांच वहिरंग साधन सांख्य और योग में समान है किन्तु योग में किसी विषय को ध्येय बनाकर अन्तर्मुख होते है और सांख्य मे निरालम्बन के कारण आत्म साक्षात्कार करते हैं। सांख्य में ध्यानं निर्विषय मनः के द्वारा चित्त वृत्ति को हटाते हैं।

सांख्य दर्शन –

सांख्य के प्रमुख प्रवर्तक कपिल मुनि हैं। इनका प्रमुख ग्रन्थ 'तत्व समास' है।

संसार में प्रत्येक प्राणी की इच्छा रहती है कि मैं सुखी होऊँ, दुखी कभी न होऊँ। दुख की जड़ अज्ञान है। जिसको योगदर्शन में अविद्या कहते हैं। जिसका मूल कारण अस्मिता है। अस्मिता-राग द्वेष देहाध्यास अथवा जड़तत्व में राग द्वेष रखने के कारण प्राणी दुखी होता रहता है। इससे सिद्ध है कि चेतन तत्व से भिन्न जड़ तत्व भी है। योग दर्शन में अष्टौ प्रकृतयः षोड़श विकाराः नाम से कहा गया है। जड़तत्व में प्रथम दो भेद प्रकृति, और विकृति है। उनमें से आठ प्रकृतियाँ हैं – अर्थात् मूल अव्यक्त प्रकृति, महतत्व, अहंकार और पांच तन्मात्राएं – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध।

सोलह विकृतियां हैं। उनमें पांच स्थूल भूत – आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी और ग्यारह इन्द्रियां अर्थात पांच ज्ञानेन्द्रियां कान, त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण। पांच कर्मेन्द्रियां – वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा और मन। इन 24 तत्वों को प्रकृति-विकृति कहते हैं। इनके आगे कोई विकृति नहीं होती। 25 वां तत्व 'पुरुष विशेष' ईश्वर कहलाता है। जो क्लेश, कर्म, विपाक, आशय आदि से रहित है। इसी को वेदान्त में 'ब्रह्म' कहते हैं।

ब्रह्म की अभिन्न शक्ति को 'माया' कहा गया है। जो सत् भी है, असत् भी है तथा न सत्

है और न असत् अर्थात् अनिर्वचनीय है। गीता में बताया है कि 'माया' जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का कार्य ब्रह्म की ही अध्यक्षता में करती है।

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतु ना अनेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।।

दो अनादि तत्व –

सांख्य और योग में चेतन और जड़ दो अनादि तत्व माने गये हैं। पुरुष अर्थात् चेतन तत्व ज्ञानस्वरूप, निष्क्रिय, असंग कूटस्थ और नित्य है।

जड़ तत्व (सत्, रज और तम) त्रिगुणात्मक, सक्रिय और परिणामी है। सत्व प्रकाश, सुख, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य तथा धर्म स्वभाव वाला है। तमस् भारी, मोह, अवैराग्य और अधर्म स्वभाव वाला है। रजस् क्रिया गति चंचलता तथा दुःख स्वभाव वाला है। योग में चित्त के निरुद्ध होने पर कैवल्य को प्राप्त होता है।

चार महावाक्य –

साधक योगी अपनी स्वरूप स्थिति वेदों के इन चार महावाक्यों के द्वारा प्राप्त होता है –

(1) यजुर्वेद – अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ।
(2) सामवेद – तत्त्वमसि – वह तू ही ब्रह्म है। गुरु उपदेश द्वारा
(3) अथर्ववेद – अयमात्मा ब्रह्म (यह आत्मा ही ब्रह्म है)
(4) ऋग्वेद – प्रज्ञानं घन (चेतन आत्मा ब्रह्म है)

• • •

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम्।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः।।

– चाणक्य

धर्माचरण से रहित मनुष्यों को मैं जीवित रहते हुए भी मरे हुए के समान मानता हूँ। धर्माचरण करने वाला मर कर भी जीवित रहता है, इसमें कोई शक नहीं क्योंकि उसका नाम और यश अमर रहता है।

श्री सद्गुरुदेव की कृपा से श्री कृष्ण भगवान का साक्षात्कार

– प्रेम बिहारी त्रिपाठी, से. नि. अधिशासी अभियंता, झाँसी

यह साक्षात्कार इसी वर्ष, इसी माह सितम्बर 2012 की तारीख एक दो तीन व चार को घर के भीतर आँगन में सायंकाल साढ़े चार बजे से पाँच बजे के बीच प्रतिदिन, दिन के उजाले में, मेरी धर्मपत्नि श्रीमती इन्दिरा त्रिपाठी को श्री सद्गुरुदेव भगवान योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की असीम कृपा से हुआ।

मैंने श्री सिद्धगुफा सवांई आश्रम आकर जुलाई 1980 में श्री सद्गुरुदेव भगवान योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज से प्रथम बार अकेले दीक्षा लेने के 15 माह बाद, अक्टूबर 1980 में पुनः दूसरी बार श्रीसद्गुरुदेव के झाँसी योग प्रचार कार्यक्रम के दौरान अपनी पत्नि इन्दिरा के साथ मिलकर दीक्षा ग्रहण की थी। उन दिनों हम लोग इतना ही जानते थे कि प्राचीन हिन्दु परम्परा के अनुसार किसी योग्य ब्राह्मण या पहुँचे हुए संत अथवा किसी सिद्धयोगी से दीक्षा ग्रहण करना उचित होता है। इससे शिष्य को साधना और ईश्वर प्राप्ति में लाभ होता है। उस समय तक इन्दिरा की कोई रुचि गुरु अथवा सद्गुरु में नहीं थी किंतु, श्रद्धापूर्वक माँ दुर्गा जी के मंत्रों का जप करना, भगवान शंकर जी की पूजा एवं अभिषेक करने एवं श्री बांकेबिहारी जी की लीलायें सुनने व उनके लिए विशेष रूप से नाना प्रकार के व्यंजनों का प्रसाद बनाकर मंदिर भिजवाने में, इन्दिरा की विशेष रुचि दिखाई देती थी।

दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एक रास्ता और खुल गया था जो अध्यात्म जगत की गलियों से गुजरता हुआ सीधा सद्गुरुदेव के परमधाम को जाता था। सत्संग में जाना, गुरुदेव के कार्यक्रमों में उपस्थित होकर उनके प्रवचनों को सुनना, उन पर मन के संशय निवारण हेतु प्रश्न करना और उनका समाधान प्राप्त करना आदि ऐसे कार्य थे जिनसे गुरु के प्रति श्रद्धा को बढ़ाने में विशेष योगदान मिला। इन्दिरा की भौतिक संसार के आकर्षण से थोड़ा पीछे चलने की आदत और संसारी प्रपंचों के उलझाव से थोड़ा बचकर चलने के स्वभाव ने, इस स्त्री को पूरी तरह स्त्री नही बनने दिया। ह्रदय में आठ अवगुणों को धारण करने वाली स्त्री क्षमता को, गुरुदेव ने पूरी तरह अपनी कृपा से प्रभावहीन कर दिया था। इन्दिरा का बनाया प्रसाद जब तक श्री बांके बिहारी जी को नहीं लग जाता, वह तब तक भोजन नहीं करती।

मेरे साथ इन्दिरा का कई बार श्री सिद्धगुफा सवांई धाम जाना हुआ। गुरुदेव का प्रवचन, चाहे आश्रम में होता, अथवा कहीं और इन्दिरा को उसे सुनने की हार्दिक इच्छा रहती। जहाँ तक सम्भव हो, गुरुदेव के निकट, आगे बैठकर, गुरुदेव के प्रवचन का हर शब्द अपने कानों में समेट कर मन तक पहुँचाने के लिए वह आतुर रहती। योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हमारे सद्गुरुदेव द्वारा रचित योग सिद्धान्त प्रथम भाग एवं योग

सिद्धान्त द्वितीय भाग के अध्ययन ने आध्यात्म जगत के भेदों को खोल कर, स्पष्ट कर दिया कि चौरासी लाख योनियों में भटकते हुए कष्टों से बचना है तो योग की शरण जाना है। उनके द्वारा रचित अन्य पुस्तकों ने योगियों की चमत्कारिक शक्तियों की जानकारियाँ स्पष्ट करके मन और बुद्धि को योग की ओर प्रेरित किया। दफ्तर से घर जब आता तो इन्दिरा को कोई न कोई योग संबंधी पुस्तक पढ़ते हुए पाता। यह क्रम यहाँ चला।

गाजीपुर पोस्टिंग के दौरान इन्दिरा को इलाहाबाद, मिर्जापुर, वाराणसी में योग प्रचार कार्यक्रमों में भाग लेने का अनेक बार अवसर मिला। वाराणसी में गुरुदेव का प्रवचन चल रहा था। योग के उत्सुक, गुरुदेव के शिष्य एवं भक्तों की भारी भीड़ बैठी सुन रही थी। इन्दिरा आगे गुरुजी के सामने बैठी हुई थी। प्रवचन समाप्त हुआ, प्रसाद वितरण प्रारम्भ हो गया। गुरुदेव स्वयं अपने हाथों से प्रसाद बांटते थे। बस इसी बीच कुछ लोग अपनी अपनी कठिनाइयों, कष्ट व परेशानियों का निवेदन भी कर देते थे। भीड़ कम हो जाने पर, जब इन्दिरा प्रसाद लेकर पीछे हटने लगी तो गुरुदेव ने पूछा, 'क्यों मुनिया! तू कभी कुछ अपने गुरुजी से नहीं माँगती? बस एक टक देखती रहती है।'

'गुरुजी क्या माँगू? सब कुछ आप ही ने तो दिया है'. इन्दिरा के संतोषप्रद उत्तर से गुरुदेव अति प्रसन्न हुए। हाथ उठाकर इन्दिरा का सिर थपथपा कर, आशीर्वाद दिया। इन्दिरा के मन में यह बात बैठ गई कि गुरु जी कुछ देना चाहते है।

इलाहाबाद में कुम्भ मेला चल रहा था। हम लोग कानपुर से इलाहाबाद गुरुदेव के योग प्रचार कार्यक्रम में सम्मिलित होने गये हुए थे। रामानुजनगर पर श्री सिद्धगुफा सत्संग का पंडाल सम्पूर्ण व्यवस्था के साथ लगा हुआ था। हम सब वहीं ठहरे हुए थे। गुरुदेव ने एक नाव यमुना नदी के किनारे से जो कि किले की तरफ पड़ता है, हम सबको उसमें लेकर, संगम स्नान के लिए चल दिये।

गंगा, यमुना और सरस्वती इन तीन पवित्र नदियों के परस्पर मिलन स्थल को संगम कहते है। इस स्थान पर गंगा यमुना की रेत जमा हो जाने के कारण, लोगों को खड़े होकर स्नान करने की सुविधा बीच नदी में मिल जाती है, यहाँ काफी उथला जल रहता है किंतु इसके आस-पास एक दम गहरा। संगम के बाद यमुना एवं सरस्वती का लोप हो जाता है और आगे मिर्जापुर होते हुए बनारस जाने वाली नदी केवल गंगाजी कहलाती है। मैं, मेरी पत्नि इन्दिरा और दोनों पुत्रियाँ प्रतिभा और विभा, गुरुजी के पीछे-पीछे संगम के उथले जल में स्नान करने लगे। स्नान करते-करते गुरुदेव आगे बढ़ते चले गये। उनके पीछे-पीछे इन्दिरा और दोनों पुत्रियाँ भी उत्साह के साथ गुरुदेव के साथ नहाती हुई बढ़ गई। मैं तो बहुत पीछे रह गया था। गुरुदेव के साथ यह तीनों बढ़ती चले गये और इसी के साथ संगम का उथला जल खत्म होता गया, बच्चियाँ और इन्दिरा भी डूबने की स्थिति में आ गई। तीनों में से किसी को भी तैरना नहीं आता था। छोटी बोली, 'गुरुजी अब तो हम सब डूब कर मरजायेंगे (मर जायेंगे)।' गुरुदेव ने

स्थिति को समझ लिया। संसार के भव सागर से पार लगाने वाले, भला संगम में क्यों डूबने देंगे। गुरुदेव ने इन्दिरा से कहा, ''मुनिया तू मेरी कमर जोर से पकड़ ले, एक बिटिया का हाथ गुरुदेव ने स्वयं पकड़ लिया दूसरी ने गुरुजी की धोती पकड़ कर लटक गई। गुरुदेव ने पानी की गहराई देखते हुए अपनी ऊँचाई बढ़ाली। गुरुदेव अब लगभग सात फुट ऊंचे हो गये। यह दृश्य आश्चर्यजनक था। गुरुदेव की कमर से लटके हुए, गुरुदेव के तीनों भक्त गुरुदेव जय जय सद्गुरु जय जय, बोलते हुए धीरे–धीरे संगम की उथली रेत पर आ गये। तीनों में से किसी में भी भय का लेशमात्र भी न था वे सब प्रसन्न थे।

इस भूमण्डल पर संगम जैसी पवित्र स्थली में, स्वयं भगवान श्री कृष्ण एवं भगवान सदाशिव में लय रहने वाले परमात्मस्वरूप श्री सद्गुरुदेव का दिव्य स्पर्श इन्दिरा को जो मिला था, उसका दिव्य पुण्य फल एक, दो, तीन एवं चार सितम्बर 2012 को मिला। उस समय इन्दिरा को संगम के पवित्र जल में अपनी कमर से लटका कर गुरुदेव पार लगा रहे थे। अब 24–25 वर्ष बाद भगवान श्री कृष्ण के साक्षात्दर्शन करा के भवसागर से पार लगा दिया।

कानपुर पोस्टिंग के दौरान, उस दिन गुरुदेव को कलकत्ता की ओर जाते हुए, कानपुर से निकलना था। कानपुर स्टेशन पर इस गाड़ी का ठहराव दस मिनट था। कानपुर के गुरुभाइयों से पता चला कि गुरुदेव दोपहर 1.00 बजे अमुक ट्रेन से आ रहे हैं। सभी शिष्यगण माल्यार्पण एवं दर्शन लाभ प्राप्त करने हेतु पहुँचे।

इन्दिरा ने रसगुल्ले बनाकर, गुरुजी को अर्पण करने की अपनी इच्छा प्रकट की परंतु मैंने तुरंत मना कर दिया और बता दिया कि गुरुजी किसी के हाथ की बनी, रास्ते की चली हुई, अशुद्ध भोजन सामग्री नहीं ग्रहण करते। इसलिए मूर्खतापूर्ण काम करने की मत सोचना। इतना सब कहकर मैं दफ्तर चला गया। इन्दिरा ने मेरी बात सुनी, लेकिन गुरुप्रेम की लगन और गुरुतत्व के भाव ने, उसे विह्वल कर दिया। उसने नौकर को भेज कर खोवा मंगाया और रसगुल्ले बनाकर एक डिब्बे में पैक कर लिये। इन्दिरा समस्त गुरुभाइयों के बीच प्लेट फार्म पर गुरुजी की गाड़ी आने की प्रतीक्षा करने लगी। गाड़ी तो समय से थी लेकिन मैं लेट हो गया। था। इन्दिरा के एक हाथ में रसगुल्ले का कटोरदान तथा दूसरे में पुष्पमाला थी। गाड़ी समय से आकर प्लेटफार्म पर रुक गई। आश्रम की प्रधान शिष्या उमा बहिन जी डिब्बे के बाहर कुछ मिनटों के लिए आई। इन्दिरा के हाथ में डिब्बा देखकर पूछ बैठी, इसमें क्या है? इन्दिरा ने सहजभाव से बताया कि गुरुजी के लिए रसगुल्ले बनाकर लाये हैं। उमा बहिन जी थोड़ा झुंझलाकर बोली, 'तुम्हें नहीं पता गुरुजी किसी के घर का बना, रास्ते चला अपवित्र भोजन ग्रहण नहीं करते। भूलकर भी देने का प्रयास मत करना अन्यथा बुरी तरह डांट खाओगी गुरुजी से' इतना कहकर उमा बहिन जी अन्य गुरुभाइयों की कुशलक्षेम पूछने हेतु उनकी ओर बढ़ गई। इन्दिरा का उत्साह फीका पड़ गया। उसे मेरी बात याद आयी, मैंने भी तो ऐसा ही कुछ कहा था। पुष्पमाला पहिनाने के लिए इन्दिरा भी गुरुजी की खिड़की की तरफ बढ़ी, तो गुरुजी ने स्वयं

हाथ का सहारा लेकर, पुष्पमाला पहिन ली क्योंकि इन्दिरा के एक हाथ में रसगुल्लों का डिब्बा भी था। अन्तर्यामी, घट-घट की बात जानने वाले, सब के मन में उठने वाले भावों को पहिचानने वाले गुरुदेव ने मुस्कुराकर, इन्दिरा से पूछा, "ये तू हाथ में क्या लिये है, जिसे छुपाने का प्रयास कर रही है?" "कुछ नहीं गुरुजी! ये आपके लिए रसगुल्ले बनाये थे।" इतना भर बोलना था इन्दिरा का कि गुरुजी ने तुरन्त कहा, "ला जल्दी दे मुझे। मेरे लिए बनाये हैं और मुझसे ही छुपा रही है।" इन्दिरा के हाथ से डिब्बा लेकर, वहीं खिड़की पर खोला, एक रसगुल्ला निकाला और खा लिया। डिब्बा बंद करके, उमा बहिन जी के हाथों में देते हुए कहा, "उमा इसे रख ले, रात को खायेंगे। ये मेरी मुनिया ने बनाये हैं।" उमा बहिन जी आश्चर्य चकित थीं। गाड़ी चलने का समय हो गया था। रास्ते में जाम लगा होने के कारण, देर हो गई थी फिर भी जहाँ से रास्ता मिला उसी तरफ से जीप छोड़कर केवल हो स्टेशन की ओर तेज गति से बढ़ने लगा। सोच रहा था गाड़ी साढ़े दस की, चली भी गई होगी। गाड़ी ने सीटी दी, तभी गुरुजी ने पूछा, "मुनिया, रमेश जी कहाँ है?" "गुरुजी लगता है रास्ते में जाम में कहीं फंसकर रह गये।" इन्दिरा ने उदास होते हुए कहा। गाड़ी चल दी। फिर एकाएक रुक गई। गार्ड सीटी पर सीटी बजाता हुआ, हरी झंडी दिखा रहा था। लाइन क्लीयर थी, सिग्नल नीचे था, ड्राइवर बार-बार इंजिन आगे बढ़ाने का प्रयास कर रहा था, लेकिन इंजिन आगे नहीं बढ़ रहा था। लोगों में अफवाह फैली शायद इंजिन खराब हो गया है। ड्राइवर की समझ में नहीं आ रहा था कि गाड़ी आगे क्यों नहीं बढ़ रही है।

मैं जीप तब तक स्टेशन परिसर में प्रवेश कर, ओवरब्रिज की ओर जल्दी-जल्दी बढ़ रहा था। मेरे बढ़ते कदम, प्लेटफार्म पर खड़ी गाड़ी को देखते हुए, उस डिब्बे को तलाशने लगे, जहाँ गुरुजी बैठे थे, जहाँ गुरुभाइयों की भीड़ लगी थी। कुछ ही सैकिण्डों में डिब्बे की उस खिड़की तक मैं पहुँच गया, जहाँ गुरुदेव विराजमान थे। "लल्ला तुम आ गये?" गुरुदेव ने प्रसन्नतापूर्वक पूछा। "हाँ गुरुदेव! मैं जाम में फंस गया था," मैंने बताते हुए, पुष्पमाला पहिनाई और चरण स्पर्श किये। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया और गाड़ी जिसके इंजिन में कोई खराबी नहीं थी चल दी।

1989 में झाँसी में आयोजित योग प्रचार कार्यक्रम के बाद हम सब लोग श्री सद्गुरुदेव को दर्शन दिया करने के लिए रेलवे स्टेशन झाँसी के प्लेटफार्म नं. 4 पर एकत्र थे। ब्रह्मचारीगण एवं गुरुभाइयों को मिलाकर काफी संख्या थी। गाड़ी लगभग 1 घण्टा लेट हो गई। गुरुभाई इधर-उधर टहलने लगे। आश्रम के ब्रह्मचारी सामान की देखभाल कर रहे थे। इन्दिरा अपनी छोटी बेटी के साथ, गुरुदेव की बगल में खड़ी थी। गुरुदेव थोड़ा टहलना चाहते थे, वे इन्दिरा के कंधे पर हाथ रख कर, धीरे-धीरे टहलने लगे। यकायक पूछ बैठे, "क्यों मुनिया तुम्हारे गुरुदेव का वजन बहुत भारी हो गया है?" इन्दिरा ने नकारात्मक स्वर में कहा, "नहीं गुरुजी ऐसी बात नहीं है। नहीं मुनिया ऐसी ही बात है।" गुरुजी ने गम्भीर स्वर में कहा, "सोचता हूँ अब इस शरीर को छोड़ दूँ, ये भारी हो गया है," इतना कहकर गुरुदेव चुप हो गये। मुनिया की समझ में नहीं आ रहा

था कि गुरुदेव ऐसा क्यों कह रहे हैं? कुछ देर गुरुजी योंही टहलते रहे, फिर यकायक बोले, 'तू तो मुनियाँ कुछ माँगती ही नहीं है, कुछ मांग लेती मुझ से।' इन्दिरा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या मांगना है। यकायक गुरुदेव बोले, 'तू तो बस अपने गुरुदेव को देखना जानती है, केवल दर्शन ही करती रहती है। तुझे इसका फल अवश्य मिलेगा। इन्दिरा की समझ में नहीं आ रहा था, 'शरीर भारी हो गया है, सोचता हूँ अब इसे छोड़ दूँ। दर्शन का फल अवश्य मिलेगा। क्या मिलेगा? कब मिलेगा? ये सारी बातें गुत्थी की तरह उलझ कर रह गई उस समय। गाड़ी आई और गुरुदेव को हार्दिक विदाई देकर, हम सब लौट आये। अगले वर्ष 25 जून 1990 को अचानक एक खबर ने सबको व्यथित कर दिया, योग प्रचार कार्यक्रम के दौरान, देहली में श्री सतगुरुदेव ने शरीर त्याग दिया है।

हमारे गुरुदेव जन्म से ही श्रीकृष्णमय रहे। उनको दर्शन देने के लिए भगवान श्री कृष्ण उनके हम उम्र बनकर, उनके पास खड़े होकर उन्हें दर्शन दिया करते थे। श्री वृन्दावन में जिन स्थलों पर द्वापर युग में श्री कृष्ण भगवान ने विभिन्न प्रकार की लीलायें रचाई थीं, उन स्थलों पर हमारे गुरुदेव को इस कलियुग में वही सारी लीलायें करते, भगवान श्री कृष्ण अपने सखा एवं गोपियों के साथ खुली आँखों से दिखाई देते थे। इस अलौकिक दिव्यानन्द का अवलोकन करने हेतु वे प्रायः श्रीवृन्दावन आ जाते थे, उन्हें वृन्दावन के श्री बांके बिहारी जी अतिप्रिय थे। हमारे गुरुदेव में विशेषता यह थी कि उनको भगवान श्रीकृष्ण में पूर्णलयता प्राप्त होने के साथ–साथ भगवान सदाशिव में भी पूर्णलयता प्राप्त थी। इसीलिए वे कहते थे कि तात्विक रूप से भगवान श्रीकृष्ण एवं भगवान सदाशिव एक ही तत्व के दो नाम हैं।

श्री गुरुदेव के स्थूल शरीर छोड़ने के लगभग 9, 10 साल बाद इन्दिरा के प्रायः हमेशा स्वस्थ रहने वाले शरीर में आस्ट्रोआर्थोराइटिस नामक घुटनों के जोड़ों की बीमारी ने धीरे–धीरे कदम रखा था और अब 2012 आने तक यह बीमारी पूरी तरह विकसित हो गई, जबकि अच्छे से अच्छे डॉक्टरों का इलाज लगातार चलता रहा। अब तो एकाध फर्लांग चलने में, सीढ़ियां चढ़ने में काफी तकलीफ होने लगती है।

इस वर्ष अगस्त 2012 में भादपद माह के बीच, एक माह ''पुरुषोत्तममास'' 18 अगस्त से 16 सितम्बर तक प्रारम्भ हुआ। यह पुरुषोत्तम माह भगवान श्री कृष्ण को समर्पित माह माना जाता है। मंदिरों में इस माह अनेक प्रकार के धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन चल रहा है। इन्दिरा ने अपने श्री बांके बिहारी जी के दर्शनों की गहरी इच्छा व्यक्त की, किंतु घुटनों व कमर के दर्द से लाचार, न तो पैदल रात्रि में मंदिर तक जा सकती है और न सीढ़ियाँ भीड़ में चढ़ सकती है। इस मजबूरी ने इन्दिरा को दुखी कर दिया, पूजा कक्ष में जाकर सद्‌गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करने लगी, आप तो गुरुजी स्वयं सर्वसमर्थ हैं, फिर मुझे पैरों की ऐसी तकलीफ आपने क्यों दे दी कि आज मैं अपने बांके बिहारी जी के दर्शन करने भी नहीं जा सकती।'

दिनांक एक सितम्बर 2012 दिन शनिवार, घर के आंगन में प्लास्टिक की कुर्सी पर

बेटी इन्दिरा एक्वागार्ड की नली से गड्ढे में पानी भर रही थी। अब आगे स्वयं इन्दिरा द्वारा ....

"समय शाम साढ़े चार और पांच बजे के बीच का रहा होगा। एकाएक आंगन की देहरी पर डेढ़ दो वर्ष का एक सुन्दर बालक खड़ा मेरी ओर देखकर मुस्कुरा रहा था। बालक के शरीर से प्रकाश ही प्रकाश निकल रहा था। माथे के ऊपरी हिस्से में सफेद मोतियों अथवा सफेद चमकती कौड़ियों की दो लर वाली माला बंधी हुई थी, माला की छोटी-छोटी लटकन माथे पर लटक रही थी। माला के बीच में एक सुन्दर मोर पंख लगा हुआ था, जो ऊपर की तरफ जाकर कुछ तिरछा हो गया था। बाजुओं और कलाई में भी सफेद चमकदार मोतियों के बाजूबंद और कलाईबंद बंधे हुए थे जिनसे सफेद प्रकाश निकल रहा था। बदन के ऊपरी हिस्से में कोई वस्त्र नहीं पहिने थे, परंतु नीचे की तरफ कमर से घुटनों तक पीला चमकदार धोतीनुमा रेशमी वस्त्र पहिने थे। पैरों में चांदी की सफेद पायजेब चमक रही थी, उसमें लगे मोती झिलमिला रहे थे। पैरों में कोई चप्पल या जूता न होकर, बालक नंगे पैर था। बालक का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। रंग हल्का सांवला, होंठ एक दम गुलाबी, आंखें बड़ी-बड़ी जो अति आकर्षक थी। सारे शरीर से एक अद्भुत दिव्य प्रकाश निकल रहा था। मेरी कुर्सी से बालक की दूरी लगभग डेढ़ मीटर से कम ही रही होगी। मुझे ध्यान आया कि मैंने कुछ देर पहिले ही गैलरी का दरवाजा बंद करके कुण्डी लगाई थी फिर ये बालक यहां तक कैसे आ गया। इतना सुन्दर बालक किसका हो सकता है। बालक मेरी ओर देखकर हँस रहा था। उसके छोटे-छोटे दूध की तरह सफेद दाँत गुलाबी होंठ के बीच चमक रहे थे। दो तीन मिनट तक यही दृश्य चलता रहा। गड्ढा भर गया था किंतु मेरी दृष्टि उस बालक पर टिकी थी। एक हाथ से एक्वागार्ड का स्विच बंद करते हुए मैंने पूछा, 'तुम कौन हो?' बालक कुछ नहीं बोला, बस मेरी तरफ देखता हुआ हँसता रहा।

भीतर से छोटी बेटी ने जोर से पूछा, "अम्मा तुम किससे बातें कर रही हो?" इससे पहिले कि मैं कुछ बोलती, बालक अन्तर्धान हो गया। मेरा मन खिन्नता से भर गया और मुझे जाने कैसा लगने लगा, मैंने इस बात का जिक्र किसी से नहीं किया और अपने आप में गुम हो गई।

दूसरे दिन दो सितम्बर 2012 दिन रविवार को, वही समय शाम लगभग साढ़े चार से पाँच बजे के बीच का वही स्थान घर का आंगन। डायनिंग टेबुल के निकट कुर्सी पर मैं बैठी थी। छोटी बेटी पहिली मंजिल के कमरे में कम्प्यूटर पर काम कर रही थी और त्रिपाठी जी दूसरी मंजिल के अपने साधना कक्ष में कुछ कर रहे थे। बैठक और गैलरी के दरवाजे बंद थे।

एकाएक मेरी नजर आंगन की देहरी पर पड़ी, तो स्तब्ध रह गई। वही सुन्दर बालक अपनी मनोहारी दिव्य छटा बिखेरता हुआ, खड़ा है। इस बार मेरी और उसके बीच की दूरी यही कोई 9-10 फुट रही होगी। वह धीरे से सम्भल कर देहरी से उतरा और धीरे-धीरे लड़खड़ाते पैरों से हिलता डुलता चलता हुआ मेरे निकट आकर खड़ा हो गया। उसने अपना एक हाथ मेरे ऊपर रख लिया। उसके कोमल हाथ के दिव्य स्पर्श से मेरा सारा शरीर स्फुरणा से भर गया। उसके शरीर से दिव्य प्रकाश की करोड़ों किरणें एक साथ निकल रही थीं। मैंने देखा वे किरणें

मेरे शरीर में भी समाती जा रही है। कुछ क्षणों बाद मेरे शरीर से भी प्रकाश–सा निकलने लगा। उसके गुदगुदे हाथों का स्पर्श मुझे अवर्णनीय सुख दे रहा था। मेरी वाणी को जैसे लकवा मार गया हो, मेरे सारे शब्द शून्य में कहीं खो गये थे। मैं एकटक उस बालक को देख रही थी, वो हँस रहा था। मैं भी हँस रही थी। मेरे नेत्रों से टप–टप कर आँसू गिर रहे थे। मैं उसके कोमल हाथों के स्पर्श से, उस दिव्यानन्द का अनुभव करने लगी, जिससे बड़ा संसार का कोई आनन्द नहीं होता। उस दिव्य बालक ने मेरे गालों का स्पर्श किया, जो मेरे टपकते आँसुओं से गीले हो रहे थे मैंने भी उसके मुखारविन्द को अंगुली से छुआ। उसने अपने ओठों से मेरे गालों का स्पर्श किया। मेरे शरीर से फिर प्रकाश की किरणें निकलने लगीं। यह स्थिति लगभग 10–12 मिनट तक चलती रही। यकायक निकट खड़ा बालक अन्तर्ध्यान हो गया। मैं ठगी–सी उसे आंगन के चारों ओर ढूँढती रही, किंतु बालक नहीं दिखा।

दिनांक 3 व 4 सितम्बर 2012 दिन सोमवार एवं मंगलवार को ठीक उसी समय दिन के उजाले में, घर के उसी आंगन में 2 सितम्बर 2012 की तरह, वही दिव्य बालक आंगन की देहरी पर पुन: प्रकट हुआ, चलकर धीरे–धीरे उसी तरह मेरे निकट आया और मेरे ऊपर अपने दोनों हाथ रख दिये, वही सब लीला करके 10–12 मिनट बाद अन्तर्ध्यान हो गया।

इस तरह चार दिनों तक लगातार दिन के उजाले में, पूरी चैतन्यावस्था में, बहुत निकट और स्पर्श करके, स्पर्श सुख का दिव्यानन्द देते हुए, युगचक्र, जगचक्र और कालचक्र को साथ–साथ चलाने वाले भगवान श्री कृष्ण ने मुझे दर्शन दिये। जिन्हें मैं चारों दिनों तक एक अति सुन्दर बालक मात्र ही समझती रही, वह तीनों लोकों के नाथ भगवान श्री कृष्ण ही थे, यह बात मेरी तब समझ में आई जब पांच सितम्बर 2012 के बाद वह फिर दिखाई नहीं दिये। मैंने उन्हें बहुत ढूँढा, बहुत प्रतीक्षा की पर वे नहीं आये। मैं बहुत रोई, मेरे नेत्रों से रह–रह कर, आँसू टपकते रहे परंतु उन्होंने फिर दर्शन नहीं दिये। मैं उनके चरण स्पर्श भी नहीं कर पायी। जब वे नहीं आये तो मैं उस जमीन को स्पर्श करके याद कर रही थी, जहाँ वो खड़े थे।

4 सितम्बर की रात्रि में भोजन करते समय, भगवान श्रीकृष्ण के बालस्वरूप के दर्शन लगातार 4 दिनों तक प्राप्त होते रहने का राज इन्दिरा के मन में और अधिक गोपनीय नहीं रह सका। उसने प्रत्येक दिन का वर्णन मुझे यथावत सुना दिया। मैंने इन्दिरा द्वारा बताये गये प्रत्येक दिन के प्रत्येक अंश को कागजों पर लिखा। शंकालु स्वभाव होने के कारण, मैंने किसी नतीजे पर पहुँचने से पहिले, एक वकील की तरह, इन्दिरा से अनेक प्रश्न किये और उनका उत्तर पूछा। अंततोगत्वा मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, सद्गुरुदेव ने संगम स्नान के समय, नदी की गहराई में डूबने से बचाने हेतु, इन्दिरा को अपनी कमर से लटका कर जो दिव्य लीला की, कानपुर स्टेशन पर अपने सारे नियमों को तोड़कर, इन्दिरा के हाथों से बना, रास्ते चला रसगुल्ला खाकर और झांसी स्टेशन पर अपने शरीर को बदलने की इच्छा बताकर तथा इन्दिरा के द्वारा गुरुदेव से कुछ न मांगने पर तू तो कुछ माँगती

नहीं, वरन् एकटक अपने गुरुजी के दर्शन करती रहती है। इन दर्शनों का दिव्य प्रतिफल कालचक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को साथ-साथ चलाने वाले भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन करा कर, श्री सद्गुरुदेव ने लगभग 23-24 वर्ष बाद इन्दिरा को दिया। सद्गुरुदेव भगवान की जय।

• • •

कर रहे शक्ति का संचार

– 'चन्द्र ज्योति प्रकाश' विजय कुमार शर्मा, सहारनपुर (उ.प्र.)

कर रहे शक्ति का संचार,
योगी श्री चन्द्रमोहन सरकार
विजयादशमी को जग में आये
अलीपुर धरा के भाग्य जगाये
इनके चरणों में कोटि प्रणाम

योगी श्री चन्द्रमोहन ...

देवी राम गुरु चन्द्रदत्त आये
माँ भारती भी लाड़ लड़ाये
इनकी लीला अपरम्पार

योगी श्री चन्द्रमोहन ...

बचपन में बन्धु को कुशल सिखाया
जब प्रभुजी ने उन्हें मिलाया
फिर साथ दिया उनके हाथ

योगी श्री चन्द्रमोहन ...

ऋषिकेश में चन्द्रमोहन जी आये
दीक्षा प्रभु रामलाल जी से पाये
ध्यान को गुरुधाम किया धाम

योगी श्री चन्द्रमोहन ...

योग विद्या प्रभुजी से पाई
योग साधना जग में फैलाई
प्रभुजी ने सौंपा सारा काम

योगी श्री चन्द्रमोहन ...

सबके अन्तर्मन की जाने
योग शक्ति जग उनकी माने
शरण में लेकर करें निहाल

योगी श्री चन्द्रमोहन ...

• • •

वैराग्य

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

जैसा कि सूत्र की भूमिका में बताया गया है, वैराग्य का परमात्मा के स्वरूप की प्राप्ति में विशेष योगदान है। वैराग्य के बिना न तो परमात्मदर्शन की जिज्ञासा होगी और न कोई भी आध्यात्मिक साधना। इसीलिए परमार्थमार्ग में प्रगति केवल R>1 की स्थिति में ही सम्भव है। जैसे ही परमात्मा की माया ने पंचभूतात्मक तथा गुणन्वित सृष्टि का निर्माण किया तो उसमें परमात्मा ने चैतन्यात्मा के रूप में प्रवेश कर लिया और माया ने मन के रूप में प्रवेश कर लिया। इसीलिए माया की सृष्टि का अस्तित्व भी तभी तक जब तक उससे राग–द्वेष के रूप में सम्बन्ध बना हुआ है, क्योंकि –

मनसो हि अमनीभावे द्वैतं न समुपद्यते।।

अर्थात् जब मन की विषयासक्ति समाप्त हो जाती है और निर्विषयी मन अपने कारण प्राण में लीन हो जाता है तब द्वैतसंसार भी समाप्त हो जाता है। द्वैतभाव के समाप्त होते ही माया का भ्रान्तिरूपी बन्धन भी समाप्त। अत: वेदवाणी की यह घोषणा है कि –

मन: एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो:।
विषयासक्तो निबन्धाय मोक्षाय निर्विषयं मन:।।

अर्थात् मनुष्यों की मायापाश से मुक्ति अथवा संसार में सुख–दु:खों के मायाजाल में बन्धन, इन दोनों का एकमात्र कारण हमारा अपना चित्त ही है, क्योंकि जब तक चित्त विषयभोगों की चित्तवृत्तियों के आवरण से आच्छादित है तभी तक मायिक बन्धन में विवश तथा दु:खों से त्रस्त रहता है। जैसे ही चित्त निर्विषय हो जाता है, वैसे ही परमात्मभाव में प्रवेश हो जाता है।

वैराग्य का अर्थ है कि चित्त में विषयवृत्तियों का अभाव। यह वृत्तियाँ ही माया का मलावरण बन कर चित्त को आच्छादित किये रहती हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को निमित्त बनाकर इसी ओर संकेत किया है कि –

धूमेनावृत्तो वह्नि यथादर्शो मलेन च।
यथोल्वेन आवृत्तो गर्भ: तथा तेनेदं आवृत्तम्।।

अर्थात् जिस प्रकार धुँआ अग्नि को ढक लेता है, जिस प्रकार मल दर्पण को तथा जाल गर्भ को आवृत्त कर लेता है उसी प्रकार यह विषयवृत्तियाँ चित्त को आवृत्त किये रहती हैं। महर्षि पतंजलि ने भी यही सत्य प्रकट किया है कि –

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।
तदवस्थे चेतसि विषयाभावात् बुद्धिबोधात्मा पुरुषः किं स्वभाव:।
तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम्।

अर्थात् परमार्थतः शरीरों में चैतन्यात्मा द्रष्टा सदैव निर्विकार विशुद्ध ही है किन्तु बुद्धिबोधात्मक होने से बुद्धि के प्रत्ययों के रूप में प्रकाशित होता है, क्योंकि जब बुद्धि में प्रत्ययों का अभाव हो जाता है तब वह द्रष्टा अपने विज्ञानमय स्वरूप में प्रकाशित रहता है। इसी का नाम परमात्मसाक्षात्कार है। विषयभोगों की वासनाओं के प्रत्ययों की बुद्धि में अभावावस्था ही परवैराग्य है, अन्यथा –

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान् गुणान्।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।।

अर्थात् अज्ञानावस्था में जीवात्मा मायाजनित इन्द्रियों के माध्यम से माया के गुणकर्मपरिणामों से उत्पन्न विषयभोगों को भोगता है और गुणासक्ति के कारण जन्म–मरण की आवागमन प्रक्रिया के वशीभूत होकर जीवात्मा को अनेकानेक योनियों में शरीर धारण करने पड़ते हैं। जब तक संसार की भोगसामग्री में जीवात्मा की आसक्ति रहती है और उनकी प्राप्ति के लिए सकाम कर्मों में प्रयासरत रहती है तब तक संसार से वैराग्य नहीं होता। ऐसी स्थिति में –

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषु उपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधः उपजायते।।
क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशात् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति।।

(गीता)

अर्थात् जब मन में विषयसुख को पाने की इच्छा रहती है और मन उसका चिन्तन करता रहता है तब चित्त में उसकी वासना के संस्कार संचित होते जाते हैं, इस आसक्ति से कामनायें उत्पन्न होती हैं, कामनाओं की प्राप्ति में अवरोध आने पर क्रोध पैदा हो जाता है, क्रोध से अज्ञान और अज्ञान से भ्रान्तियाँ तथा भ्रान्तिजन्य संस्कारों से बुद्धि मलिन हो जाती है और तब मलिन बुद्धि के संवेदन से बुद्धिबोधात्मक आत्मा मायाचक्र में चलित होकर जन्ममरण के दुःखों में शोकातुर बनी रहती है। यही माया का गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन है। अज्ञानी जीव माया के इस खेल को नहीं समझ सकते। भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

शरीरं यदवाप्नोति यदुत्क्रामतीश्वरः।
ग्रहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्।।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते।।

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते।।

अर्थात् इस मनुष्यलोक में जितने भी शरीरधारी जीव हैं, वह सब परमात्मा का ही अभिन्न अंश हैं। जिस प्रकार समस्त जलाशयों में दीखने वाला सूर्य प्रतिबिम्ब सूर्य का ही अभिन्न अंश है, क्योंकि सूर्य के अभाव में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं। जिस प्रकार घट में व्याप्त गन्दगी से आकाश का अंश घटाकाश भी गन्दा हो जाता है उसी प्रकार प्रकृति की मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की चित्तवृत्तियाँ रूपी गन्दगी से बुद्धिबोधात्मिका जीवात्मा सुखदुःखादि वृत्तियों से गन्दी मालूम पड़ती है। जैसे वायु के साथ गन्ध भी बहती है, वैसे ही शरीर धारण करते हुए अथवा छोड़ते हुए चित्त की यह संस्काररूपी गन्ध भी साथ रहती है। मायाबद्ध जीव को अज्ञान के कारण इस सत्य का अनुभव ही नहीं होता। केवल सिद्धयोगी ही ज्ञानचक्षु से इस सत्य को देख पाते है, किन्तु वैराग्यहीन तथा विषयभोगों तथा माया की भ्रान्तिमूला शक्ति से विमोहित जीव समाधि की अवस्था में अपनी विशुद्ध बुद्धि में ज्ञानचक्षु प्राप्त नहीं कर सकते। ज्ञानचक्षु प्राप्त करना ही मनुष्यजीवन का परम लक्ष्य है, क्योंकि –

अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावात् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

(श्वेता. उप. 1/4)

अर्थात् पूर्णवैराग्य के अभाव में विषयभोगों में आसक्ति के कारण ही आत्मा जीवभाव से ग्रसित है तथा मायापाश में बँधकर असमर्थ तथा मोहग्रस्त है। ज्ञानचक्षु के द्वारा अपने परमात्मस्वरूप को जानकर इन समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाती है।

विषयभोगों में जो सुखानुभूति है, वह भी भ्रान्तिमात्र है। जैसे अन्धकार के कारण रज्जु में सर्पभय की भ्रान्ति हो जाती है, वैसे ही अविद्या माया के अन्धकार में बुद्धि में सुखादि की भ्रान्ति होती है, क्योंकि –

कण्डूयमानेन यथा भवेत् सुखम्।
पश्चात् च महापीडा तथा वैषयिकं सुखम्॥

ये हि संस्पर्शजाः भोगाः दुःखयोनयः एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

परिणामतापसंस्कारदुःखैः गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्वं दुःखमेव विवेकिनः॥

अर्थात् खुजली के रोग में खुजाने से सुख की अनुभूति होती है किन्तु उसके तुरन्त बाद रोग तथा पीड़ा दोनों की वृद्धि हो जाती है। ठीक ऐसा ही विषयभोगों के सुख का परिणाम होता है, क्योंकि उनका आदि तथा अन्त निश्चित है, केवल भोगकाल में इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों से स्पर्शमात्र होता है और स्पर्श के तुरन्त बाद अन्त हो जाता है। जिसका आदि से पूर्व तथा अन्त के बाद अभाव है, उसकी भोगकाल में भी मृगतृष्णा जैसी भ्रान्ति होती है। यह भ्रान्ति वैसी ही है जैसा कि पदार्थों का अभाव होने पर भी स्वप्न में किये गये विषयभोगों के सुख की अनुभूति हम सब को विदित है। इन विषयसुख के जो वासनामय संस्कार तथा स्मृतियाँ चित्त में संचित हो जाती है वही जीव के लिए कर्मबन्धन का मायाजाल तैयार कर देती है। अतः विवेकी पुरुष इस वासना की दलदल से दूर रहते है। इसी को वैराग्य कहा जाता है।

• • •

परमात्मा की उपलब्धि

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पि-
रापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः,
एवमात्माऽत्मनि गृह्यतेऽसौ
सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।

अर्थ – तिल में तेल, दही में घी, स्रोतों में जल और अरणियों में अग्नि जिस प्रकार छिपे रहते है, उसी प्रकार वह परमात्मा अपने हृदय में छिपा हुआ है। जो कोई साधक उसको सत्य के द्वारा संयम के द्वारा, तप के द्वारा देखता रहता है यानी चिन्तन करता रहता है उसे वह परमात्मा अवश्य प्राप्त हो जाता है। अर्थात् ऐसे तपस्वी योगी साधक को परमात्मा अवश्य प्राप्त हो जाते है।